वर्ष : १३
अंक : ११८
अक्टूबर २००२
आश्विन मास
विक्रम सं. २०५९

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी
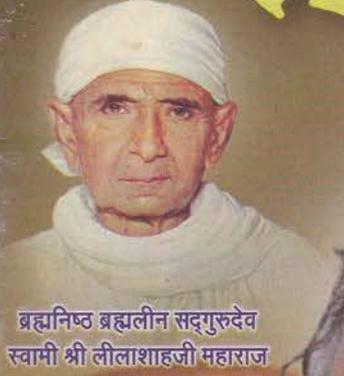
ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मलीन सद्गुरुदेव
स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज
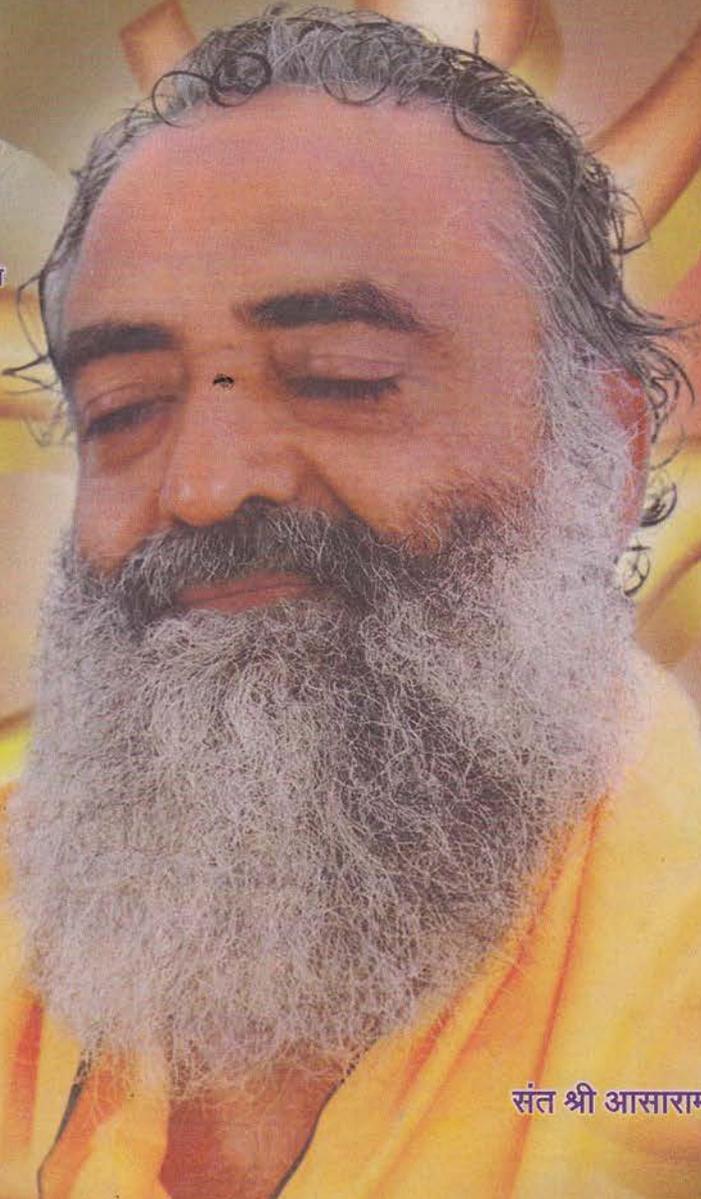
संत श्री आसारामजी बापू

संतुष्ट अपने आप में, संतृप्त अपने आप में।
मन बुद्धि अपने आप में, है चित्त अपने आप में॥
अभिमान जिसका गल गलाकर, आप में रल जाय है।
परिपूर्ण है सर्वत्र सो, ना जाय है, ना आय है॥

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १३
अंक : ११८
९ अक्टूबर २००२
आश्विन मास, विक्रम संवत् २०५९
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'**
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
e-mail : ashramamd@ashram.org
web-site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप और विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

अनुक्रम

१. काव्यगुंजन २
✲ आयी दीवाली
२. तत्त्व दर्शन २
✲ योगविद्या से भी ऊँची है आत्मविद्या
३. श्रीमद्भगवद्गीता ४
✲ पहले अध्याय का माहात्म्य
४. गीता-अमृत ६
✲ अधर्मी का धर्म
५. श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण ९
✲ जगत क्या है ?
६. विवेक दर्पण १०
✲ कबीरा निंदक ना मिलो...
७. सद्गुरु महिमा १२
✲ गुरुकृपा हि केवलम्...
८. संत चरित्र १४
✲ संत चरनदासजी
९. शास्त्र प्रसंग १७
✲ स्त्रीपर्व
१०. कथा प्रसंग १९
✲ जालन्दरनाथ
११. जीवन पथदर्शन २२
✲ राजा रुक्मांगद की एकादशी व्रत-निष्ठा
१२. पर्व मांगल्य २५
✲ माँ लक्ष्मी का निवास कहाँ ?
✲ दीपज्योति की महिमा
१३. वास्तु-प्रसाद २९
१४. स्वास्थ्य संजीवनी ३०
✲ विविध रोगों में आभूषण-चिकित्सा
१५. भक्तों के अनुभव ३१
✲ पानी-प्रयोग से अद्भुत लाभ
१६. संस्था समाचार ३२

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ व शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० तथा रात्रि १०.०० से १०.३०
'संकीर्तन' सोमवार तथा बुधवार सुबह ९.३० और मंगल तथा गुरुवार शाम ५.०० बजे

आयी दीवाली

मंगलमय नवप्रभात लिये।
समता निर्भयता साथ लिये।
सुख चैन अमन सौगात लिये।
आयी गुरु ज्ञान की दीवाली ॥
आयी...

श्रद्धा भक्तिरस भाव सुमन।
अनासक्त पुलकित तन-मन।
गूँज उठे आत्म गुंजन।
छलके हरिनाम रस की प्याली ॥
आयी...

निज ज्ञान ध्यान मनन चिंतन।
सात्त्विक बुद्धि हृदय पावन।
सहज सरल सुमधुर जीवन।
अंतर भय भेद से हो खाली ॥
आयी...

आनंद रस जामे खुमार लिये।
सत्य धर्म सनातन सार लिये।
सुख स्वरूप बसंत बहार लिये।
छायी सोम-रोम में खुशहाली ॥
आयी...

मन मंदिर में ज्योति जगे।
तम अंधियारा दूर भगे।
ओम शिवोऽहम् नाद बजे।
चित चेतना झूमे मतवाली ॥
आयी...

तुम्हारे हृदय-मंदिर में प्रभुकृपा का दीया सदा जगमगाता रहे यही शुभकामनाएँ। - प.पू. बापू

तत्त्व दर्शन

योगविद्या से भी ऊँची है आत्मविद्या

⁂ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ⁂

योग में चित्तवृत्ति का निरोध हो जाता है और व्यक्ति समाधिस्थ हो जाता है। समाधि से सामर्थ्य आता है, परंतु जीवत्व बाकी रह जाता है। 'पातंजल योगदर्शन' और 'कुंडलिनी योग' के अनुसार अभ्यास करने पर मनोजय हो जाता है, समाधि हो जाती है, सामर्थ्य आ जाता है; परंतु जब साधक समाधि से उठता है तो उसे जगत सच्चा लगता है। इसलिए इन समाधियों को 'लय समाधि' कहा गया है।

योगविद्या से मन का लय होता है जबकि आत्मविद्या से मन का बाध हो जाता है।

मन के बाध और लय में क्या फर्क है ?

आपने रस्सी में साँप देखा और आपको भय लगा। किसीने आपको आश्वासन दिया और वीरता की अच्छी बातें कहीं। आपने सोचा कि 'यह साँप मेरा क्या बिगाड़ेगा ?' और आप खाने-पीने में, सुख-सुविधा के साधनों में मस्त हो गये। इस प्रकार रस्सी में दिखनेवाले साँप से आपका भय गायब हो गया। परंतु फिर जब रस्सी में दिखनेवाले साँप की तरफ गये तो हृदय की धड़कनें बढ़ गयीं... अर्थात् आप कुछ समय के लिए साँप की सत्यता भूल गये, फिर आपने देखा तो वही रस्सी साँप होकर सच्चा भासने लगी। यह है मन का लय होना।

अगर टॉर्च लेकर आपने रस्सी को देख लिया तो फिर रस्सी दिखेगी तो साँप के आकार की, परंतु साँप आपको सच्चा नहीं लगेगा, क्योंकि वह बाधित

हो गया। यह है मन का बाध।

ऐसे ही आत्मविद्या संसाररूपी सर्प को बाधित कर देती है और योगविद्या मन को लय कर देती है तो संसाररूपी सर्प नहीं दिखता। योगविद्या के साथ आत्मविद्या नहीं है तो योगविद्यावाले का पतन हो सकता है। इसलिए 'गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है : **योगभ्रष्टोऽभिजायते।** पतन से तात्पर्य संसारी व्यक्ति की तरह पतन से नहीं; संसारी की जो स्थिति है उससे तो योगविद्यावाले बहुत ऊँचे होते हैं, परंतु आत्मविद्या की ऊँचाई के आगे वे बच्चे हैं।

जब तक आत्मविद्या को ठीक से नहीं समझते, तब तक धन का, विद्या का, सत्ता का कोई-न-कोई भूत अंदर घुस जाता है और तुच्छ चीजों का, प्रकृति के गुण-दोषों का आरोप अपने में करके हम लोग एक दायरा बना लेते हैं और उस दायरे से बाहर नहीं निकल पाते। 'मैं पटेल', 'मैं सिंधी', 'मैं गुजराती'- इसी दायरे में उलझकर रह जाते हैं। लोग भले कहें और हम भी ऊपर-ऊपर से 'हाँ' कहें, परंतु भीतर से समझना चाहिए कि हम गुजराती भी नहीं, पटेल भी नहीं, सिंधी भी नहीं, हम तो हम ही हैं। जो उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में एकरस साक्षी है, वह परम सत्ता और हम एक हैं।

जिस सत्ता से यह तन पैदा हुआ, यह मन उत्पन्न हुआ, बुद्धि व अहं उत्पन्न हुए और बदलते रहते हैं, जो इन सबको सत्ता-स्फूर्ति देता है और सबको बदलने की सत्ता देता है, वह चैतन्य आत्मा हम हैं। उसीको तत्त्वरूप से जानना - यह आत्मविद्या का लक्ष्य है।

ऋद्धि-सिद्धि का सामर्थ्य, सफलता आदि सब प्रकृति के अंतर्गत होते हैं। जिन्होंने पानी को घी बना दिया - ऐसे योगियों का नाम मैंने सुना है। बीमार को ठीक कर दिया... मुर्दे को ज़िंदा कर दिया... ये सब ठीक हैं, परंतु हैं सब प्रकृति के अंतर्गत। तत्त्वज्ञान इससे बहुत ऊँची चीज है। तत्त्वज्ञान पाने के लिए अहं को विसर्जित करना पड़ता है। योगविद्या में मन का लय होता है, एकाग्रता से सामर्थ्य आता है, परंतु ब्रह्मविद्या में मन बाधित हो जाता है और तत्त्व का बोध हो जाता है।

मन आत्मा में लय हो जाय - यह एक बात है और मन बाधित हो जाय - यह दूसरी बात है। जैसे, विश्वासपात्र व्यक्ति ने सर्प से निश्चिंत कर दिया तो आप निश्चिंत हो गये, परंतु विश्वासपात्र व्यक्ति की जगह कोई दूसरा आकर कहने लगे कि 'भाई ! उन्होंने भले कह दिया कि साँप नहीं काटेगा परंतु आप सँभलना...' तो उसकी सत्यता मौजूद रहेगी। ऐसे ही योगविद्या में कितने भी ऊँचे चले जाओ तो भी योगी को थोड़े-बहुत पतन का भय बना रहता है, परंतु ज्ञानी को कोई भय नहीं क्योंकि ज्ञानी के लिए जगत बाधित हो जाता है। जैसे, टॉर्च से रस्सी को रस्सी जानकर सर्प की सत्यता चली जाती है, ऐसे ही आत्मज्ञानी के लिए जगतरूपी सर्प बाधित हो जाता है। ऐसा ज्ञानवान जगत से निर्लेप हो जाता है।

जैसे, सूर्य अपने स्थान पर रहकर जगत को अपने किरणरूपी हाथ से छू लेता है फिर भी निर्लिप्त रहता है, ऐसे ही वह चैतन्य 'मैं' अपनी सत्ता-स्फूर्ति की चेतना के द्वारा सारे शरीरों को छूता है फिर भी निर्लिप्त रहता है। जैसे, सूर्य सब पेड़-पौधों को छूता है और उसीकी सत्ता से सब जीते हैं, फलते-फूलते हैं परंतु वे मिट जायें, नष्ट हो जायें फिर भी सूर्यनारायण का बाल तक बाँका नहीं होता। ऐसे सूर्यनारायण में भी जिसकी सत्ता है उस सत्ता का कुछ नहीं बिगड़ता। वही सत्ता आँखों के द्वारा देखती है, कानों के द्वारा सुनती है, जिह्वा के द्वारा बोलती है, मन के द्वारा सोचती है, बुद्धि के द्वारा निर्णय लेती है, वही सत्ता लेकर अहं 'मैं-मैं' करता है। वही सत्तास्वरूप 'मैं' हूँ, ऐसा बोध हो जाना - यह आत्मविद्या का उद्देश्य है।

जीव का यह स्वभाव है कि वह जिस शरीर में आता है उसी शरीर को 'मैं' मानकर अपनी आयुष्य गिनता है। वास्तव में देखा जाय तो उसने हजारों शरीरों में कई-कई बार जन्म लिये और जिस-जिस शरीर में जन्म लिया उसीको 'मैं' मान लिया, परंतु वह वास्तव में 'मैं' नहीं है। अगर वह शरीर 'मैं'

होता तो शरीर चले जाने के बाद 'मैं' भी चला जाता... परंतु ऐसा नहीं है।

आपका वास्तविक स्वरूप कहीं आता-जाता नहीं है - ऐसा ज्ञान हो जाना आत्मविद्या का लक्ष्य है जबकि प्राकृतिक गुण-दोष और पदार्थ आने-जानेवाले हैं।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

'ज्ञान के समान कोई पवित्र नहीं है।'

यदि कोई इस आत्मविद्या के विचार में नित्य तल्लीन रहे तो उसकी कामनाएँ, आकर्षण आदि दूर हो जाते हैं। कामनाएँ दूर होते ही काम्य पदार्थ उसकी शरण खोजने आते हैं। फिर उसे यश की इच्छा नहीं होगी तब भी यश उसके पीछे पड़ेगा, उसे धन की इच्छा नहीं होगी तब भी धन उसकी गुलामी करेगा, भोग की इच्छा नहीं होगी तब भी भोग उसके इर्दगिर्द मँडरायेंगे। कोई कहे कि 'महाराज! हमें भी तो यश, धन, भोग की कोई इच्छा नहीं है फिर भी यश तो नहीं मिला।' अरे! 'इच्छा नहीं है' कहकर भी यश तो चाहते हैं, गहराई में तो इच्छा है! भीतर से इच्छा हटनी चाहिए। गहराई से इच्छा हटते ही इच्छित पदार्थ आपके इर्दगिर्द मँडराने लगते हैं - यह प्रकृति का नियम है।

जिसके चित्त में कोई इच्छा नहीं होती, उसके चित्त में राग-द्वेष भी कैसे हो सकते हैं? जिन्होंने अपने हृदय में ठीक से साक्षी होकर अपने स्वरूप को जान लिया, उनको सदैव-सर्वत्र अपना-आपा ही नजर आता है। ऐसे महापुरुषों के चित्त में राग-द्वेष कहाँ?

प्रारंभ में राग-द्वेष से बचा जाता है, बाद में देश-काल की माया से भी बचा जाता है। अमुक देश में, अमुक काल में प्रीति करना - यह भी माया है। यह माया भी आत्मविद्या की प्राप्ति के बाद छूट जाती है।

योगविद्या में तो राग-द्वेष से बचने पर प्रवेश मिल जाता है और पहुँच भी हो जाती है, परंतु आत्मविद्या तो राग-द्वेष से पार करके, देश-काल से भी पार कर देती है और परब्रह्म-परमात्मस्वरूप में जगा देती है। ऐसी आत्मविद्या की महिमा है!

पहले अध्याय का माहात्म्य

श्री पार्वतीजी ने देवाधिदेव महादेव से कहा : भगवन्! आप सब तत्त्वों के ज्ञाता हैं। आपकी कृपा से मुझे श्रीविष्णु-संबंधी नाना प्रकार के धर्म सुनने को मिले, जो समस्त लोक का उद्धार करनेवाले हैं। देवेश! अब मैं गीता का माहात्म्य सुनना चाहती हूँ, जिसका श्रवण करने से श्रीहरि में भक्ति बढ़ती है।

श्री महादेवजी बोले : जिनका श्रीविग्रह अलसी के फूल की भाँति श्यामवर्ण का है, पक्षिराज गरुड़ ही जिनके वाहन हैं, जो अपनी महिमा से कभी च्युत नहीं होते तथा शेषनाग की शय्या पर शयन करते हैं, उन भगवान महाविष्णु की हम उपासना करते हैं।

एक समय की बात है। मुर दैत्य के नाशक भगवान विष्णु शेषनाग के रमणीय आसन पर सुखपूर्वक विराजमान थे। उस समय समस्त लोकों को आनंद देनेवाली भगवती लक्ष्मी ने आदरपूर्वक प्रश्न किया।

श्री लक्ष्मीजी ने पूछा : भगवन्! आप संपूर्ण जगत का पालन करते हुए भी अपने ऐश्वर्य के प्रति उदासीन-से होकर जो इस क्षीरसागर में नींद ले रहे हैं, इसका क्या कारण है?

श्री भगवान बोले : सुमुखी! मैं नींद नहीं लेता हूँ, अपितु तत्त्व का अनुसरण करनेवाली अंतर्दृष्टि के द्वारा अपने ही माहेश्वर तेज का साक्षात्कार कर रहा हूँ। यह वही तेज है, जिसका योगी पुरुष कुशाग्र बुद्धि के द्वारा अपने अंतःकरण में दर्शन करते हैं तथा जिसे मीमांसक विद्वान वेदों का सार-तत्त्व निश्चित करते हैं। वह माहेश्वर तेज एक, अजर,

प्रकाशस्वरूप, आत्मरूप, रोग-शोक से रहित, अखंड आनंद का पुंज, निष्पंद तथा द्वैतरहित है। इस जगत का जीवन उसीके अधीन है। मैं उसीका अनुभव करता हूँ। देवेश्वरि ! यही कारण है कि मैं तुम्हें नींद लेता-सा प्रतीत हो रहा हूँ।

श्री लक्ष्मीजी ने कहा : हृषीकेश ! आप ही योगी पुरुषों के ध्येय हैं। आपके अतिरिक्त भी कोई ध्यान करने योग्य तत्त्व है, यह जानकर मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। इस चराचर जगत की सृष्टि और संहार करनेवाले स्वयं आप ही हैं। आप सर्वसमर्थ हैं। इस प्रकार की स्थिति में होकर भी यदि आप उस परम तत्त्व से भिन्न हैं तो मुझे उसका बोध कराइये।

श्री भगवान बोले : प्रिये ! आत्मा का स्वरूप द्वैत और अद्वैत से पृथक्, भाव और अभाव से मुक्त तथा आदि और अंत से रहित है। शुद्ध ज्ञान के प्रकाश से उपलब्ध होनेवाला तथा परमानंद-स्वरूप होने के कारण एकमात्र सुंदर है। वही मेरा ईश्वरीय रूप है। आत्मा का एकत्व ही सबके द्वारा जानने योग्य है। गीताशास्त्र में इसीका प्रतिपादन हुआ है। अमित तेजस्वी भगवान विष्णु के ये वचन सुनकर लक्ष्मी देवी ने शंका उपस्थित करते हुए कहा : भगवन् ! यदि आपका स्वरूप स्वयं परमानंदमय और मन-वाणी की पहुँच के बाहर है तो गीता कैसे उसका बोध कराती है ? मेरे इस संदेह का आप निवारण कीजिये।

श्री भगवान बोले : सुंदरी ! सुनो, मैं गीता में अपनी स्थिति का वर्णन करता हूँ। क्रमशः पाँच अध्यायों को तुम पाँच मुख जानो, दस अध्यायों को दस भुजाएँ समझो तथा एक अध्याय को उदर और दो अध्यायों को दोनों चरणकमल जानो। इस प्रकार यह अठारह अध्यायों की वाङ्मयी ईश्वरीय मूर्ति ही समझनी चाहिए। यह ज्ञानमात्र से ही महान पातकों का नाश करनेवाली है। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष गीता के एक या आधे अध्याय का अथवा एक, आधे या चौथाई श्लोक का भी प्रतिदिन अभ्यास करता है, वह सुशर्मा के समान मुक्त हो जाता है।

श्री लक्ष्मीजी ने पूछा : देव ! सुशर्मा कौन था ? किस जाति का था और किस कारण से उसकी मुक्ति हुई ?

श्री भगवान बोले : प्रिये ! सुशर्मा बड़ी खोटी बुद्धि का मनुष्य था। पापियों का तो वह शिरोमणि ही था। उसका जन्म वैदिक ज्ञान से शून्य तथा क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले ब्राह्मणों के कुल में हुआ था। वह न ध्यान करता था, न जप, न होम, न अतिथियों का सत्कार ही करता था। वह लंपट होने के कारण सदा विषयों के सेवन में ही आसक्त रहता था। हल जोतता और पत्ते बेचकर जीविका चलाता था। उसे मदिरा पीने का व्यसन था तथा वह मांस भी खाया करता था। इस प्रकार उसने अपने जीवन का दीर्घकाल व्यतीत कर दिया। एक दिन मूढ़बुद्धि सुशर्मा पत्ते लाने के लिए किसी ऋषि की वाटिका में घूम रहा था। इसी बीच में कालरूपधारी काले साँप ने उसे डँस लिया और उसकी मृत्यु हो गयी। तदनंतर वह अनेक नरकों में जा वहाँ की यातनाएँ भोगकर मृत्युलोक में लौट आया और वहाँ बोझ ढोनेवाला बैल हुआ। उस समय किसी पंगु ने अपने जीवन को आराम से व्यतीत करने के लिए उसे खरीद लिया। बैल ने अपनी पीठ पर पंगु का भार ढोते हुए बड़े कष्ट से सात-आठ वर्ष बिताये। एक दिन पंगु ने किसी ऊँचे स्थान पर बहुत देर तक बड़ी तेजी के साथ उस बैल को घुमाया। इससे वह थककर बड़े वेग से पृथ्वी पर गिरा और मूर्च्छित हो गया। उस समय वहाँ कुतूहलवश आकृष्ट हो बहुत-से लोग एकत्रित हो गये। उस जनसमुदाय में से किसी पुण्यात्मा व्यक्ति ने उस बैल का कल्याण करने के लिए उसे अपना पुण्य दान किया। तत्पश्चात् कुछ दूसरे लोगों ने भी अपने-अपने पुण्यों को याद करके उन्हें उसके लिए दान किया। उस भीड़ में एक वेश्या भी खड़ी थी। उसे अपने पुण्य का पता नहीं था, तो भी उसने लोगों की देखा-देखी उस बैल के लिए कुछ त्याग किया।

तदनंतर यमराज के दूत उस मरे हुए प्राणी को पहले यमपुरी में ले गये। वहाँ यह विचारकर कि यह वेश्या के दिये हुए पुण्य से पुण्यवान हो गया है, उसे छोड़ दिया गया। फिर वह भूलोक में आकर उत्तम कुल और शीलवाले ब्राह्मणों के घर में उत्पन्न हुआ। उस समय भी उसे अपने पूर्वजन्म की बातों का स्मरण बना रहा। बहुत दिनों के बाद अपने अज्ञान को दूर करनेवाले कल्याण-तत्त्व का जिज्ञासु होकर

वह उस वेश्या के पास गया और उसके दान की बात बतलाते हुए पूछा : 'तुमने कौन-सा पुण्य दान किया था ?' वेश्या ने उत्तर दिया : 'वह पिंजरे में बैठा हुआ तोता प्रतिदिन कुछ पढ़ता है। उससे मेरा अंतःकरण पवित्र हो गया है। उसीका पुण्य मैंने तुम्हारे लिए दान किया था।' इसके बाद उन दोनों ने तोते से पूछा। तब उस तोते ने अपने पूर्वजन्म का स्मरण करके प्राचीन इतिहास कहना आरंभ किया।

शुक बोला : 'पूर्वजन्म में मैं विद्वान होकर भी विद्वत्ता के अभिमान से मोहित रहता था। मेरा राग-द्वेष इतना बढ़ गया था कि मैं गुणवान विद्वानों के प्रति भी ईर्ष्याभाव रखने लगा। फिर समयानुसार मेरी मृत्यु हो गयी और मैं अनेकों घृणित लोकों में भटकता फिरा। उसके बाद इस लोक में आया। सद्गुरु की अत्यंत निंदा करने के कारण तोते के कुल में मेरा जन्म हुआ। पापी होने के कारण छोटी अवस्था में ही मेरा माता-पिता से वियोग हो गया। एक दिन मैं ग्रीष्म ऋतु में तपे हुए मार्ग पर पड़ा था। वहाँ से कुछ श्रेष्ठ मुनि मुझे उठा लाये और उन्होंने महात्माओं के आश्रय में आश्रम के भीतर एक पिंजरे में मुझे डाल दिया। वहीं मुझे पढ़ाया गया। ऋषियों के बालक बड़े आदर के साथ गीता के प्रथम अध्याय की आवृत्ति करते थे। उन्हींसे सुनकर मैं भी बारंबार पाठ करने लगा। इसी बीच में एक चोरी करनेवाले बहेलिये ने मुझे वहाँ से चुरा लिया। तत्पश्चात् इस देवी ने मुझे खरीद लिया। यही मेरा वृत्तांत है, जिसे मैंने आप लोगों को बता दिया। पूर्वकाल में मैंने इस प्रथम अध्याय का अभ्यास किया था, जिससे मैंने अपने पापों को दूर किया है। फिर उसीसे इस वेश्या का भी अंतःकरण शुद्ध हुआ है और उसीके पुण्य से ये द्विजश्रेष्ठ सुशर्मा भी पापमुक्त हुए हैं।'

इस प्रकार परस्पर वार्त्तालाप और गीता के प्रथम अध्याय के माहात्म्य की प्रशंसा करके वे तीनों निरंतर अपने-अपने घर पर गीता का अभ्यास करने लगे। फिर ज्ञान प्राप्त करके वे मुक्त हो गये। इसलिए जो गीता के प्रथम अध्याय को पढ़ता, सुनता तथा अभ्यास करता है, उसे इस भवसागर को पार करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

अधर्मी का धर्म

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

'हे अर्जुन ! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परंतप ! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए खड़ा हो जा।' **(गीता : २.३)**

धर्म के नाम पर जब कायरता फैल जाती है, तब अधर्म का प्रभाव बढ़ जाता है। इससे ईश्वरीय विधान का उल्लंघन होता है और मनुष्य की, समाज की ज्यादा हानि होती है। जो मनुष्य ईश्वरीय विधान के अनुकूल आचरण करता है वह आगे बढ़ता है। उसका अंतरात्मा शांति पाता है, सुख पाता है और आत्मसामर्थ्य बढ़ाता है। जो ईश्वरीय विधान का उल्लंघन करता है, वह गिरता है।

आजकल यही हो रहा है। बाहर कुछ भी करके धन कमा लिया, रुपये इकट्ठे कर लिये। फिर मंदिर, मसजिद, चर्च में जाकर दान-दक्षिणा रख दी तो 'सेठजी-सेठजी, साहबजी-साहबजी...' करके वाह-वाह होने लगी। ऐसी वाहवाही से क्या होगा ? ऐसी आशिषों से क्या फायदा ? इससे धर्म की पुष्टि होगी ? नहीं। इससे तो अधर्म पुष्ट होता है। अधर्म की पुष्टि से समाज में सुख-शांति बढ़ेगी क्या ? ना, ना... अधर्म से सुख-शांति का नाश होता है।

हम चाहे कहीं भी जायें, मंदिर में जायें या मसजिद में जायें... किसीको अन्न-वस्त्र दें या दान-दक्षिणा दें... परंतु यह देखना चाहिए कि हमारा आचरण धर्म के अनुकूल है कि नहीं ? हम

जो दान-दक्षिणा देते हैं वह धन कहीं गरीबों का शोषण करके तो इकट्ठा नहीं किया है न ? यह सावधानी भी रखनी चाहिए।

जब धर्म की हानि होती है, लोग निःस्वार्थता छोड़कर स्वार्थपरायण हो जाते हैं, निरहंकारिता छोड़कर अहंकारी हो जाते हैं, हृदय की विशालता छोड़कर संकीर्ण हो जाते हैं तब परेशानियाँ झेलते हैं।

निःस्वार्थ होना, निरहंकारी होना, हृदय को विशाल रखना, **'बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय'** सत्कर्म करना धर्म है। इसमें ईश्वरीय विधान का आदर है। परंतु मैं और मेरा... पुत्र और परिवार... ऐसा छोटा दायरा बनाकर संकीर्णता से, स्वार्थ से जीते हैं तो ईश्वरीय विधान का उल्लंघन होता है, हम धर्म से च्युत होते हैं। इसलिए चिंता, शोक, भय, बीमारी, परेशानी आदि सताते रहते हैं।

दुर्योधन स्वार्थपरायण होकर अधर्म का आचरण कर रहा था। जब द्रौपदी के बालों को पकड़कर दुःशासन उसे खींचता-घसीटता भरी सभा में ले आया, तब सारी सभा देख रही थी कि द्रौपदी के साथ अन्याय हो रहा है फिर भी सब चुप बैठे थे। दुर्योधन ने भीम को भरी सभा में अपनी बायी जंघा दिखायी थी। उस समय कर्ण ने द्रौपदी को 'वेश्या' कहकर उसका अपमान भी किया था, यह भी सभा के लोगों ने देखा-सुना था।

परंतु जब युद्ध के मैदान में लड़ते समय कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में फँस गया, तब कर्ण रथ से नीचे उतरकर पहिया निकालने लगा। यह देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा : ''यही मौका है।''

श्रीकृष्ण की बात मानकर जब अर्जुन धनुष पर बाण चढ़ाकर निशाना साधने लगा, तब कर्ण ने कहा :

''यह धर्मयुद्ध नहीं है। रुको, मैं निःशस्त्र हूँ और तुम मुझ पर वार कर रहे हो ? यह धर्म नहीं है।''

कर्ण जब धर्म की दुहाई देने लगा तब श्रीकृष्ण ने कहा : ''अब तू धर्म की दुहाई देता है तो उस समय कहाँ था ? जब द्रौपदी के बाल पकड़कर घसीटते हुए उसे भरी सभा में लाया गया था और तू उसका अपमान कर रहा था, तब तेरा धर्म कहाँ गया था ?''

कभी-कभी राक्षसी वृत्ति के लोग, अधर्मी लोग भी धर्म की दुहाई देकर आपत्तिकाल में अपना बचाव करना चाहते हैं। यह धर्म के अनुकूल नहीं है।

जो आपत्तिकाल में भी धर्म का त्याग नहीं करता, वह अवश्य उन्नति करता है और जो अपनी जीवन-यात्रा में धर्म-अधर्म का ख्याल नहीं रखता, वह मारा जाता है, कुचला जाता है। उसे बहुत कष्ट सहना पड़ता है।

अपने बेटे की दुष्टता को धृतराष्ट्र जानते थे, परंतु बेटे में मोह था। इससे 'मैं और मेरे पुत्र' का संकीर्ण दायरा बनाकर उसीमें चिपके थे। दुर्योधन की महत्त्वाकांक्षाओं को और पाप-चेष्टाओं को वे जानते थे, फिर भी मोहवश उसे नहीं रोक पा रहे थे। तभी लाक्षागृह और द्यूत-क्रीड़ा जैसी घटनाएँ घटीं।

गांधारी को धर्म का ज्ञान था। वह यह भी जानती थी कि उसका पुत्र पाप का पुतला है। फिर भी उसने मोहवश ईश्वरीय विधान का उल्लंघन किया तो उसे दुःख झेलना पड़ा।

महाभारत का युद्ध चल रहा था। उस समय गांधारी को पता चला कि उसका पुत्र मुसीबत में है। उसने दुर्योधन से कहा :

''बेटे ! तुझ पर इतनी मुसीबतें आती हैं तो मैं अपने सतीत्व का आशीर्वाद तुझे दूँगी। कल सुबह तू एकदम नग्न होकर मेरे सामने आ जाना। मैं अपनी आँखों की पट्टी खोलूँगी। तेरे शरीर पर मेरी नजर पड़ेगी तो तेरा शरीर वज्र जैसा हो जायेगा। फिर कोई भी तुझे मार नहीं सकेगा।''

गांधारी धर्म के मार्ग पर चलती थी, परंतु वह भी मोहवश धर्म छोड़कर अधर्म की पीठ ठोंकने लगी थी।

कभी-कभी धार्मिक व्यक्ति भी अधर्म की पीठ ठोंकने लग जाता है, तब अधर्म पुष्ट हो जाता है और धर्म की हानि होती है। परंतु वह ज्यादा समय टिकता नहीं है। उसका नाश अवश्य होता है।

गांधारी की यह बात पांडवों तक पहुँच गयी। पांडव चिंतित होकर बैठ गये कि यदि दुर्योधन की काया वज्र जैसी हो गयी तो उस पापी का नाश करना असंभव है। अगर पापी का नाश नहीं होगा तो वह पापी औरों को सताता रहेगा... पाप और पापी बढ़ते रहेंगे।

इतने में श्रीकृष्ण वहाँ आ पहुँचे । सभी को चिंतित देखकर श्रीकृष्ण ने पूछा :

''क्या बात है ? तुम लोग इतने चिंतित क्यों हो ?''

पांडवों ने बताया : ''उस पापी दुर्योधन को गांधारी मदद कर रही है और अपने सतीत्व के आशीर्वाद से दुर्योधन को वज्रकाय बनानेवाली है। फिर क्या होगा ? यही सोचकर हम चिंतित हैं ।''

यह सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कराने लगे । तब युधिष्ठिर ने कहा :

''हम चिंता-चिंता में मरे जा रहे हैं और आप इस अवसर पर हँस रहे हैं ?''

श्रीकृष्ण तो सब कुछ जानते थे । अपने मुक्तस्वरूप को जाननेवाले श्रीकृष्ण के पास हँसी और प्रसन्नता नहीं रहेगी तो कहाँ रहेगी ? श्रीकृष्ण इसलिए हँसे कि 'गांधारी भी मोहवश पापी दुर्योधन का पक्ष ले रही है... धर्म अब अधर्म की पीठ ठोंकने लगा है ।'

गांधारी के कहे अनुसार दुर्योधन सुबह के अँधेरे में अपना शरीर वज्र का बनाने के लिए नग्न दशा में गांधारी के पास जा रहा था । तभी बीच रास्ते में श्रीकृष्ण प्रकट हो गये और बोले :

''अरे, दुर्योधन! इस दशा में कहाँ जा रहे हो ? हस्तिनापुर का सर्वेसर्वा, इतना बड़ा युवान पुत्र माँ के सामने ऐसे जा सकता है ? बिलकुल नग्न ?''

दुर्योधन शर्म के मारे नीचे बैठ गया और उसने श्रीकृष्ण को सारी बात बता दी ।

श्रीकृष्ण : ''तुम्हें वज्रकाय बनना है, यह तो ठीक है । परंतु कम-से-कम अपने कटिप्रदेश को तो ढँक लो। कटिवस्त्र नहीं है तो लो, यह फूलमाला की चदरिया ही बाँध लो ।''

दुर्योधन को श्रीकृष्ण की बात जँच गयी। उसने फूलमाला की चदरिया अपनी कमर में बाँध ली और गांधारी के पास पहुँच गया ।

गांधारी की बाहर की आँख पर तो पट्टी बँधी ही हुई थी, परंतु भीतर की विवेकरूपी आँख पर भी पट्टी बँधी थी। दुर्योधन को आया हुआ जानकर उसने दुर्योधन को वज्रकाय बनाने के लिए वर्षों से बँधी हुई पट्टी खोली और संकल्प करके देखा तो वह चौंक पड़ी :

''अरे, यह क्या ! तुझे कहा था न कि दिगंबर होकर आना । यह फूलमाला की चदरिया तुझे किसने पहनायी ? ...उस वनमाली ने ही पहनायी होगी। तेरे शरीर का और हिस्सा तो वज्र जैसा हो गया परंतु जो हिस्सा माला से ढँका है, वह कच्चा रह गया। उसे तू सँभालना।''

जब भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध हो रहा था, तब दुर्योधन को जरा भी चोट नहीं लग रही थी तो मरने की तो बात ही क्या ? इससे भीम परेशान हो रहा था । तब श्रीकृष्ण ने इशारा किया कि 'कटिप्रदेश पर गदा ठोक। भीम ने जब वहाँ पर गदा से मारा तब वह मरा।

अगर धार्मिक व्यक्ति अधर्म की पीठ ठोंकता है, तब अधर्म कुछ समय के लिए भले ही फलता-फूलता दिखे परंतु अंत में विजय तो धर्म की ही होती है ।

घटित घटना है :

एक गाँव के बाहर एक पेड़ का ठूँठ था। खुजली मिटाने के लिए एक गाय ने उससे जोर-से रगड़ मारी। ठूँठ में से एक फाँस गाय के पेट में घुसा और उस निमित्त से गाय मर गयी।

तीन साल से सूखे ठूँठ को बारिश में हरा-भरा देखकर गाँव के लोगों ने महात्मा से पूछा :

''कसाई के यहाँ कुशलता और धार्मिक के यहाँ मुसीबतें... ऐसा क्यों ? सूखा ठूँठ गाय को मारने के बाद फला-फूला, उसकी जड़ें सजीव हुईं, डालियाँ हरी हुईं, पत्ते लगे और वह तेजी-से विकसित हो रहा है !''

महात्मा मुस्कराये और बोले : ''थोड़ा धैर्य रखो ।''

वृक्ष तो बढ़ता ही जा रहा था। कुछ समय के बाद आँधी-तूफान आया, वृक्ष धराशायी हो गया। तब महात्मा ने बताया :

''अन्याय, शोषण, अधर्म से कोई फलता-फूलता है तो धराशायी होने के लिए ही।''

इसीलिए धार्मिक लोगों को अधर्म का आश्रय नहीं लेना चाहिए। उन्हें अधर्म के भोग-विलास, ऐश-आराम के लिए लालायित नहीं होना चाहिए। ईश्वरीय विधान का आदर करना चाहिए।

*

जगत क्या है ?

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' में पाँच प्रकार से जगत की व्याख्या करते हुए भगवान श्रीराम कहते हैं : (१) जगत मिथ्या है। (२) जगत आत्मा में आभासरूप है। (३) जगत कल्पनामात्र है। (४) जगत अनादि अविद्या से भासता है। (५) जगत का स्वभाव परिणामी है।

जगत मिथ्या है – यह पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा, अब भी बदल रहा है। पहले जहाँ बीहड़ जंगल था या खाइयाँ थीं, वहाँ अब मकान बन गये हैं और जहाँ पहले मकान थे, वहाँ अब खाइयाँ हो गयी हैं। जहाँ कभी समुद्र था, वहाँ अभी इमारतें खड़ी हैं और जहाँ इमारतें थीं, वहाँ अभी समुद्र लहरा रहा है। सब सपना हो जाता है।

जगत आत्मा में आभासरूप है – अपनी आत्मा में भासता है। जैसा विचार करो वैसा ही जगत भासता है। कुत्ते को जगत अपने ढंग का दिखता है, हाथी को अपने ढंग का। बाजार में कोई भेड़ दिखे तो कसाई सोचेगा कि '१५ किलो माल (मांस) है', चमार सोचेगा कि '३ या ४ फीट माल (चमड़ा) है' और ग्वाला सोचेगा कि '१ किलो दूध देगी'। यदि कोई भक्त देखेगा तो सोचेगा कि 'भगवान की सृष्टि का मूक प्राणी है' और ज्ञानी देखेगा तो सोचेगा कि 'इसका शरीर प्रकृति का है, परंतु इसके अंदर जो परमात्म-चेतना कार्य कर रही है, सबके अंदर भी वही चेतना है'। इस प्रकार जिसकी जैसी दृष्टि, वैसा ही उसे जगत भासता है।

तुम तो वही-के-वही हो, परंतु तुम्हारे प्रति जो शुभ भाव रखते हैं उन्हें तुम सज्जन लगोगे और निंदक को बेकार लगोगे। अतः जो जैसी सोच रखता है, उसे जगत वैसा ही होकर भासता है।

जगत कल्पनामात्र है – यदि कोई स्वर्ग में बैठा है और नरक की कल्पना करता है तो उसके लिए स्वर्ग भी नरकरूप हो जाता है, क्योंकि उसने नरक की कल्पना की है। अतः जिसकी जैसी मान्यता होती है, जगत वैसा ही भासता है।

जगत अनादि अविद्या से भासता है – जैसे, खरगोश के सींग और आकाश के फूल असत् होते हैं, वैसे ही जगत असत् है; परंतु असत्‌रूप अविद्या से सत्य होकर भासता है।

जगत का स्वभाव परिणामी है – जैसे, दूध को बिना गरम किये रख दो तो फट जाता है अथवा जमने पर दही हो जाता है, वैसे ही पूरा जगत परिणामी है। जो बच्चा कुछ वर्ष पहले किलकारी कर रहा था, वही अब वृद्ध होकर, लकड़ी टेककर चल रहा है। वही सिपाही था जो चलते-चलते कई कीड़े-मकोड़ों को पैरों तले रौंदता था, उसे पता भी नहीं चलता था। युद्धभूमि में घायल होने पर या मरने पर उसीके शरीर को गीध, कुत्ते, सियार नोचते हैं। ऐसा है जगत का परिणामी जीवन ! यही है संसार !

इस संसार को मिथ्या जानो, आभासमात्र जानो, अविद्यामय जानो, कल्पनामात्र जानो, परिणामी जानो। जो मूढ़ हैं, अल्पमति हैं, वे ही संसार को सत्य मानकर आसक्त होते हैं और फँस मरते हैं। वे संसारी होकर जन्मते-मरते रहते हैं। परंतु जो समझदार हैं, बुद्धिमान हैं, वे जगत के इन ५ लक्षणों को जानकर जगत से उपराम हो जाते हैं और अपने नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव में जग जाते हैं।

कबीरा निंदक ना मिलो...

अज्ञान-अंधकार मिटाने के लिए जो अपने-आपको खर्च करते हुए प्रकाश देता है, संसार की आँधियाँ उस प्रकाश को बुझाने के लिए दौड़ पड़ती हैं । टीका, टिप्पणी, निंदा, गलत चर्चाएँ और अन्यायी व्यवहार की आँधी चारों ओर से उस पर टूट पड़ते हैं । स्वामी विवेकानंद, भगिनी निवेदिता आदि को भी ऐसे निंदकों का सामना करना पड़ा था । महात्मा गाँधीजी की सेवा में कुछ महिलाएँ थीं तो गाँधीजी को भी निंदकों ने अपना शिकार बनाया था ।

असामाजिक तत्त्व अपने विभिन्न षड्यंत्रों द्वारा संतों और महापुरुषों के भक्तों व सेवकों को भी गुमराह करने की कुचेष्टा करते हैं । समझदार साधक या भक्त तो उनके षड्यंत्र-जाल में नहीं फँसते । महापुरुषों के दिव्य जीवन के प्रतिपल से परिचित उनके अनुयायी कभी भटकते नहीं, पथ से विचलित नहीं होते अपितु सश्रद्ध होकर उनके दैवी कार्यों में अत्यधिक सक्रिय व गतिशील होकर सहभागी हो जाते हैं । परंतु जिन्होंने साधना के पथ पर अभी-अभी कदम रखे हैं, ऐसे नवपथिकों को गुमराह कर पथच्युत करने में दुष्टजन आंशिक रूप से अवश्य सफलता प्राप्त कर लेते हैं और इसके साथ ही आरम्भ हो जाता है - नैतिक पतन का दौर, जो संत-विरोधियों की शांति व पुण्यों को समूल नष्ट कर देता है, कालांतर में उनका सर्वनाश हो जाता है । कहा भी गया है :

संत सतावे तीनों जावे, तेज बल और वंश ।
ऐड़ा-ऐड़ा कई गया, रावण कौरव केरो कंस ॥

अतः संतों के निंदकों से सावधान करते हुए संत कबीरजी कहते हैं :

कबीरा निंदक ना मिलो, पापी मिलो हजार ।
एक निंदक के माथे पर, लाख पापिन को भार ॥

जिनका जीवन किसी संत या महापुरुष के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सान्निध्य में है, उनके जीवन में निश्चिंतता, निर्विकारिता, निर्भयता, प्रसन्नता, सरलता, समता व दयालुता के दैवी गुण साधारण मानवों की अपेक्षा अधिक होते हैं और वे ईश्वरीय शांति पाते हैं, सद्गति पाते हैं । जिनका जीवन महापुरुषों का, धर्म का सामीप्य व मार्गदर्शन पाने से कतराता है, वे प्रायः अशांत, उद्विग्न, खिन्न व दुःखी देखे जाते हैं व भटकते रहते हैं । इनमें से कई लोग आसुरी वृत्तियों से युक्त होकर संतों के निंदक बनकर अपना सर्वनाश कर लेते हैं । इसीलिए संत तुलसीदासजी ने लिखा है :

हरि गुरु निंदा सुनहिं जे काना होहिं पाप गौ घात समाना ।
हरि गुरु निंदक दादुर[1] होई जन्म सहस्र पाव तन सोई ॥

नानकजी ने भी कहा है :

संत का निंदकु महा हतिआरा । संत का निंदकु परमेसुरि मारा ।
संत के दोखी की पुजै न आसा । संत का दोखी उठि चलै निरासा ॥

भारतवर्ष का इससे बढ़कर और क्या दुर्भाग्य हो सकता है कि यहाँ के निवासी अपनी ही संस्कृति के रक्षक व जीवनादर्श, ईश्वररत आत्मारामी संतों व महापुरुषों की निंदा में, उनके दैवी कार्यों में विरोध उत्पन्न करने के दुष्कर्मों में संलग्न होते जा रहे हैं । यदि यही स्थिति बनी रही तो वह दिन दूर नहीं, जब हम अपने ही हाथों से अपनी पावन परम्परा, रीति-रिवाजों व आचारों को लुटते हुए देखते रह जायेंगे । क्योंकि संत संस्कृति के रक्षक, उच्चादर्शों के पोषक, रोग-शोक, अहंकार, अशांति के शामक होते हैं और जिस देश में ऐसे संतों का अभाव या अनादर होता है, इतिहास साक्षी है कि या तो वह राष्ट्र स्वयं ही मिट जाता है अथवा उसकी संस्कृति ही तहस-नहस होकर छिन्न-भिन्न हो जाती है और वहाँ के लोग बाहर से स्वाधीन होते हुए भी वास्तव में अशांति, अकाल मृत्यु, अकारण तलाक,

१. दादुर = मेंढ़क

विद्रोह और खिन्नता में खप जाते हैं।

हमारे ही देश के कुछ समाचार पत्र-पत्रिकाओं में हमारे ही संतों और संस्कृति के खिलाफ अनर्गल बातें लिखी होती हैं। विदेशियों द्वारा दिये जानेवाले चंद पैसों की लालच में अपनी ही संस्कृति पर कुठाराघात करनेवालों के लिए क्या कहा जाय ?

वे हिन्दु धर्म के साधु-संतों और देवी-देवताओं के विषय में ऐसी बातें लिखते हैं कि हिन्दुओं की ही श्रद्धा टूट जाये। क्योंकि विदेशी जानते हैं कि हिन्दुओं को अगर गुलाम बनाना है तो पहले इनकी अपने ही धर्म से श्रद्धा तोड़नी पड़ेगी, क्योंकि धर्म इनका हौसला बुलंद करता है। इनकी श्रद्धा धर्म से हटने पर ही हम इन पर राज कर सकेंगे।

सदैव सज्जनों व संतों की निंदा, विरोध, छिद्रान्वेषण व भ्रामक कुप्रचार में संलग्न लेखक व पत्र-पत्रिकाएँ समझदारों की नजरों से तो गिरते ही हैं, साथ-ही-साथ लोगों को भ्रमित व पथभ्रष्ट करने के पाप के भागीदार भी बनते हैं। इस प्रकार के पाप का उन्हें अभी भय नहीं है, फिर भी भक्तों की बददुआएँ, समझदारों की लानत उनपर पड़ती है और देर-सवेर कुदरत का कोप उनपर होता ही है।

बड़े धनभागी हैं वे सत्‌शिष्य जो द्वेषपूर्ण भ्रामक प्रचार की तुच्छता समझ लेते हैं और उन अखबारों व पत्रिकाओं की होली जला देते हैं। उनसे माफी मँगवा लेते हैं अथवा उनके लिए चूड़ियाँ ले जाते हैं और उनकी बेशर्मी का उन्हें एहसास कराते हैं। उन्हीं के कार्यालय के सामने उनके अखबारों को जलाते हैं और उनके ब्लेकमेलिंग करने के मनसूबे सफल नहीं होने देते।

कुछ दिन पहले चंडीगढ़ में योग वेदान्त सेवा समिति के भाइयों ने जमीन खरीदी। एक फुट भी सरकार से जमीन नहीं ली गयी है, सारी जमीन समिति के भाइयों ने खरीदी है। उनपर लाँछन लगाकर अखबारवाले अपना कौन-सा मनोरथ पूरा करना चाहते हैं ?

बीसों एकड़ तो क्या, अगर २० गज भी सरकार की जमीन ली है - ऐसा अखबारवाले साबित कर दिखायें तो उन्हें लाखों रुपये इनाम दिये जायेंगे। बेबुनियादी बातें लिख देना, कहानी रच देना, बात कुछ-की-कुछ तोड़-मोड़ कर द्वेषपूर्ण लेख लिख देना इससे अखबारवालों की कीमत बढ़ती नहीं, घटती है।

धनभागी हैं वे सत्‌शिष्य जो तितिक्षाओं को सहने के बाद भी अपने सद्गुरु के ज्ञान और भारतीय संस्कृति के दिव्य प्रकाश को दूर-दूर तक फैलाकर मानव-मन पर व्याप्त अंधकार को नष्ट करते रहते हैं। ऐसे सत्‌शिष्यों को शास्त्रों में पृथ्वी पर के देव कहा जाता है। **- सम्पादक**

काँटे चुभना नहीं छोड़ते हैं तो इससे फूल महकना थोड़े ही छोड़ देंगे ! निन्दकरूपी काँटों के बीच संतरूपी गुलाब सत्संग, सेवा, भक्ति और ज्ञान का परिमल फैलाते ही रहते हैं। *- संत श्री आसारामजी बापू*

विषमताओं के बीच भावनाशीलता, श्रद्धा और पुरुषार्थ का दीपक न बुझ जाय यह ध्यान रखते हुए हमें चिर विकास की पगडंडी पर निरन्तर गतिमान बनना है।"

हमें तो केवल प्रकाश ही ग्रहण करना चाहिए। अन्धकार का सम्पूर्ण अनादर करते हुए जीवन को धन्य बनाने के लिए निरन्तर आगे बढ़ना चाहिए। इस संसार-वाटिका में कण्टकों और कुसुमों की कमी नहीं है। जिस किसी सुमन में रंग, सौरभ, आर्द्रता, कोमलता और पावनता मिले, उसकी पूजा करनी चाहिए और जीवन को सार्थक बनाना चाहिए। कुप्रचार और अफवाहों का शिकार बनकर मानव-जीवन बरबाद नहीं करना चाहिए। अपितु संतों के दैवी कार्यों में साझीदार बनकर अपनी इक्कीस पीढ़ियों का कल्याण करना चाहिए।

नर नहीं वह जन्तु है जिस नर को धर्म का भान नहीं।
व्यर्थ है वह जीवन जिसमें आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं ॥
चाँदी के चन्द टुकड़ों पर अपनी जिन्दगी बेचनेवालों !
मुर्दा है वह देश जहाँ पर संतों का सम्मान नहीं ॥

- आश्रम द्वारा प्रकाशित 'प्रभु ! परम प्रकाश की ओर ले चल...' पुस्तक से

गुरुकृपा हि केवलम्...

[पूज्य बापूजी का आत्म-साक्षात्कार दिवस : ८ अक्टूबर २००२]

समर्थ सद्गुरु की प्राप्ति के पश्चात् ही परमात्म-तत्त्व की वास्तविक खोज प्रारंभ होती है। उसके पहले तो न कोई मार्ग, न कोई दृष्टि, केवल बालक की तरह अंधेरे में टटोलना ही होता है। परमात्म-स्वरूप का ज्ञान, उसकी प्राप्ति का मार्ग ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु की सहायता, कृपा और उनके मार्गदर्शन के बिना वैसा ही दुस्तर है, जैसा तलवार की तेज धार पर चलना। ऐसे दुस्तर मार्ग से सुगमतापूर्वक पार होने की युक्ति वे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष ही बता सकते हैं, जो स्वयं इसे पार कर चुके हैं। जीव को जब ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु मिलते हैं, तब वे उसको परमात्मा से अभिन्नता का अनुभव कराते हैं और तभी वह संसार चक्र से मुक्त होता है।

विषयेषु तु संसर्गाच्छाश्वतस्य तु संश्रयात्।
मनसा चान्यथा कांक्षन् परं न प्रतिपद्यते ॥

'विषयों के संसर्ग से, सदा उन्हीं में रचे-पचे रहने से तथा मन के द्वारा साधन के विपरीत भोगों की इच्छा रखने से पुरुष को परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती है।' **(महाभारत, शांति पर्व : २०४.७)**

विषयों में आसक्त अज्ञानी मनुष्य अपने भीतर ही विराजमान परब्रह्म परमात्मा को उपलब्ध नहीं हो पाते। संसारी मनुष्य इस संसार में जिन-जिन विषयों को देखते हैं उन्हीं को पाना चाहते हैं। सर्वश्रेष्ठ परब्रह्म परमात्मा हैं, उन्हें पाने के लिए उनके मन में इच्छा नहीं होती है, क्योंकि वे विषयांभिलाषी होते हैं और परमात्मा गुणातीत हैं।

परमात्मा अनादि और अनन्त होने के कारण अक्षय और अविनाशी हैं। अविनाशी होने से ही दुःखरहित हैं। उनमें हर्ष और शोक आदि द्वन्द्वों का अभाव है, अतएव वे सबसे परे हैं। परंतु दुर्भाग्य है कि साधनहीनता और कर्मफल विषयक आसक्ति के कारण जिससे परमात्मा की प्राप्ति होती है, मनुष्य उस मार्ग को समर्थ सद्गुरु की अनन्य शरणागति के अभाव में प्राप्त नहीं कर पाते। अचल श्रद्धा और उत्साह के साथ विवेकादि साधन-सम्पन्न जो अधिकारी पुरुष सद्गुरु और सत्शास्त्र के उपदेशानुसार धैर्य, दृढ़ता और सावधानी के साथ सतत प्रयत्नशील रहता है वही आत्मज्ञान को उपलब्ध होता है।

यौवन, रूप, जीवन, धन-संग्रह, आरोग्य और प्रिय जनों का समागम ये सब अनित्य हैं। विवेकशील पुरुषों को इनमें आसक्त नहीं होना चाहिए। अविद्या-जनित कर्म के कारण जीव की अनेकों गतियाँ होती हैं, उनमें जाने पर वह अपने स्वरूप को नहीं पहचान सकता। जो मनुष्य सत्ता, सौंदर्य, पदार्थ, विद्यादि के मद से युक्त है, वह श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परम कारुणिक सद्गुरु की शरण में आकर परमात्म-तत्त्व का उपदेश प्राप्त करने में असमर्थ है। अंतःकरण की शुद्धि किये बिना सबके अधिष्ठानभूत परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। इसलिए विवेकी मनुष्य को सदा अंतःकरण की शुद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

जिसने निष्काम कर्म, सद्गुरु की सेवा और प्राप्त व्यवहार का निर्दोष रीति से सेवन करके अंतःकरण को मलिन विचारों से रहित कर लिया हो, चित्त को एकाग्र किया हो, विवेक-वैराग्य-शमदमादि षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुता - आत्मज्ञान के इन चार साधनों को यथासामर्थ्य प्राप्त किया हो, ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु के द्वारा ब्रह्मोपदेश का श्रवण करके उसका यथाविधि मनन और निदिध्यासन किया हो वही सद्गुरु की पूर्ण कृपा को प्राप्त कर परमात्मा को प्राप्त होता है।

गुणादाने विप्रयोगे च तेषां मनः सदा बुद्धिपरावराभ्याम्।
अनेनैव विधिना सम्प्रवृत्तो गुणापाये ब्रह्म शरीर मेति ॥
(महाभारत, शांति पर्व : २०६.२७)

'जब साधक साधनरूप गुणों को धारण कर लेता है और सांसारिक पदार्थों से मन को हटा लेता है, तब उसका मन बुद्धिजन्य अच्छे-बुरे भावों से रहित होकर निरन्तंर निर्मल रहता है। इस प्रकार साधन में लगा हुआ साधक जब गुणों से अतीत हो जाता है, तब ब्रह्म के स्वरूप को साक्षात् कर लेता है।'

जैसे, रात्रि के अंधकार को सूर्य नष्ट कर देता है, उसी प्रकार मुमुक्षु अपने ज्ञान-प्रकाशरूप दृष्टा भाव से दृश्य-रूप जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति के कर्म और स्मृति तथा अज्ञान के अभिमान का त्याग कर दे तथा अपने में सबको लीन कर स्वयंसाक्षी, स्वयंप्रकाश, सर्वाधिष्ठान रूप से स्वंय को पहचाने। सद्गुरु की कृपा से जब मैं कर्त्ता-भोक्ता नहीं हूँ। **'नाहं कर्ता ब्रह्मैवाहमस्मि।'** इस प्रकार वेदान्त-वाक्य से उत्पन्न ज्ञानाग्नि के द्वारा जीव के समस्त अनादि संचित और क्रियमाण कर्म जल जाते हैं। जैसे, जला हुआ बीज उत्पन्न होने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार जीव के संचित कर्म दग्ध हो जाने से उसे पुनर्जन्म प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह सारे बंधनों से मुक्त हो जाता है।

जो पुरुष शब्द आदि विषयों को, उनके आश्रयभूत सम्पूर्ण व्यक्त तत्त्वों को, स्थूल भूतों और प्राकृत गुण-समुदायों को त्याग देता है अर्थात् उनसे संबंध-विच्छेद कर लेता है, वह उन्हें त्यागकर अमृतस्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

जिज्ञासु निश्चय करे कि 'यह रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि, धातु से बना और चर्म से ढँका स्थूल देह मैं नहीं हूँ। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध को भीतर ग्रहण करानेवाली द्वाररूप श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा तथा घ्राण ज्ञानेंद्रियाँ भी मैं नहीं हूँ। वचन, दान, गमन, हर्ष और मल त्याग करनेवाली वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ तथा गुदा ये पाँच कर्मेंद्रियाँ भी मैं नहीं हूँ। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समानादि पंच वायु और इनकी पंचक्रिया भी मैं नहीं हूँ। समस्त दृश्य-विषय और देह भी मैं नहीं हूँ। इस प्रकार नेति-नेति की अवधि के पश्चात् जो नेति-नेति वृत्ति का साक्षी शेष रहनेवाला है, वही सच्चिदानंदस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

जब साधक सबके आदिकारण निर्गुण ध्येय-तत्त्व को ध्यान द्वारा अंतःकरण में प्राप्त कर लेता है, तब कसौटी पर कसे हुए सुवर्ण के समान ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। जब निश्चयात्मिका बुद्धि अंतर्मुखी होकर हृदय में स्थित होती है, तब मन विशुद्ध हो जाता है। मन का बुद्धि में, बुद्धि का ज्ञान में और ज्ञान का परब्रह्म परमात्मा में लय हो जाता है। जो ध्यान, सांख्य तथा कर्म-उपासना करने में असमर्थ हैं, वे ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के निश्चय से अपनी बुद्धि को जोड़ दें अर्थात् वे जैसा निश्चय करायें उसी प्रकार सुनकर निश्चय कर लेने से वे श्रवणपरायण पुरुष भी सरलता से मृत्युरूप संसार को निःसंदेह अविलम्ब तर जाते हैं, मुक्तिपद को, परमानंद को प्राप्त कर लेते हैं।

अनागतं सुकृतवतां परां गतिं स्वयम्भुवं प्रभवनिधानमव्ययम्।
सनातनं यदमृतमव्ययं ध्रुवं निचाय्य तत् परममृतत्वमश्नुते॥

'जो कहीं से आया हुआ नहीं है, नित्य विद्यमान है, पुण्यवानों की परमगति है, स्वयम्भू (अजन्मा) है, सबकी उत्पत्ति और प्रलय का स्थान है, अविनाशी तथा सनातन है, अमृत, अविकारी तथा अचल है, उस परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।'

(महाभारत, शांति पर्व : २०६.३२)

सद्गुरु परमात्मा को अपने-आपको दे दो और वह सब कुछ पा लो जो तुम स्वयं हो। वह मिला हुआ ही है। अपने समस्त अहंकार को उनके श्रीचरणों में मिटा दो। यदि सब कुछ देकर भी तुम्हें ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु मिल जायें तो अहोभाग्य! क्योंकि देने योग्य तुम्हारे पास है भी क्या जो दोगे? उनके मिलने से जन्मों-जन्मों की मान्यताएँ-आस्थाएँ, भ्रांतियाँ, अंधविश्वास और संशय नष्ट होने लगेंगे। वे तुम्हें भगवद्भक्ति के प्रवाह में अवगाहन करवाकर, प्रबल वैराग्य जगा देंगे। यथोचित कर्मानुष्ठान करवाकर, निरन्तर आत्म-अभ्यास द्वारा जीवभाव की निवृत्ति करके परमानन्द में निमग्न कर देंगे। बिना ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के शिष्य अज्ञान-अंधकार में भटकता और विक्षिप्त होता

रहता है। वे शिष्य को परमात्मप्राप्ति कराकर ही चैन लेते हैं। परम दयालु, कृपा सिंधु सद्गुरुदेव शिष्य को असत्य में से सत्य में, मृत्यु में से अमरत्व में, बंधन में से मोक्ष में, जीवत्व में से ब्रह्मत्व में प्रतिष्ठित कर देते हैं।

जिन्होंने संसार के धोखे से पार कर दिया, मुक्त कर दिया, जीव को उसके भूले हुए स्वरूप का स्मरण करा दिया, उन करुणासिंधु श्री सद्गुरुदेव को अनन्त-अनन्त प्रणाम हैं।

*

संत चरनदासजी

अलवर शहर (राजस्थान) से ८ कि.मी. दूर डेहरा नामक गाँव में सन् १७०३ ई. के भादों शुक्ल तृतीया, मंगलवार के दिन पिता मुरलीधर व माता कुंजीदेवी के घर संत चरनदासजी का अवतरण हुआ। नामकरण संस्कार के समय उनका नाम रणजीत रखा गया। उनके पिताश्री साधु स्वभाव के, त्यागी वृत्तिवाले, प्रभुभक्त और एकांत प्रेमी थे। वे घंटों तक ध्यान में लीन रहते थे। उनकी माता कुंजीदेवी संतसेवी और विदुषी थीं।

संत चरनदासजी को ५ वर्ष की अल्पायु से ही रामनाम के जप का स्वाद लग गया था। वे स्वयं तो प्रेम से रामनाम जपते थे, साथ में अपने साथियों को भी प्रभु के नाम-सुमिरन की प्रेरणा देते थे। एक दिन वे जब, रामनाम कीर्तन में मस्त थे, तब वैरागी-तपस्वी वेदव्यासनंदन शुकदेवजी ने उन्हें अपनी गोद में लेकर प्यार किया, इससे उनके हृदय में प्रभुप्रेम की प्रबल धारा प्रवाहित हो गयी। तत्कालीन रीति के अनुसार छठे वर्ष में उन्हें पाठशाला पढ़ने के लिए भेजा गया, परंतु अध्यापकों के लाख प्रयत्नों के बावजूद भी उन्होंने लौकिक विद्या पढ़ना अंस्वीकार कर दिया। उन्होंने एक दिन अध्यापकों का हठ देखकर कहा :

आल जाल तू कहा पढ़ावे।
कृष्ण नाम लिख क्यों न सिखावे॥
जो तुम हरि की भक्ति पढ़ाओ।
तो मोकू तुम फेर बुलाओ॥

इस पंक्ति से उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि उनकी रुचि प्रभुनाम-जप में अधिक और लौकिक

विद्या में कम है।

जब रणजीत ८ वर्ष की आयु अवस्था के हुए, तब एक दिन उनके पिताजी जंगल में एकांत साधना करते हुए अचानक लोप हो गये। इस घटना के कुछ महीने बाद उनके दादा प्रागदासजी व दादी यशोदा का भी अचानक निधन हो गया। पति के बाद सास-ससुर की छाया भी सिर से उठ जाने से माता कुंजीदेवी के दिल पर गहरा आघात लगा। रणजीत अपनी माता के दुःखी हृदय पर प्रेम के फाहे रखने में सफल हो गये। माता कुंजीदेवी का मन दुःख और चुप्पी से ऊब चुका था। उनके लिए अब डेहरा गाँव में रहना असहनीय हो गया था, इस कारण वे पुत्र के साथ दिल्ली में स्थित अपने मायके चली गयीं।

दिल्ली में कुंजीदेवी के चाचा भिखारीदास शाही दरबार में उच्च पदाधिकारी थे। उन्होंने कुंजीदेवी को हर प्रकार से मदद देने का आश्वासन दिया। उन्होंने रणजीत को अरबी व फारसी भाषा सीखाने के लिए कादिरबख्श नामक एक मौलवी को नियुक्त किया। उस मौलवी ने भी रणजीत को पढ़ाने का भरसक प्रयत्न किया, परंतु उन्हें भी निराशा ही हाथ लगी।

उन दिनों छोटी उम्र में ही विवाह हो जाते थे। रणजीत के लिए भी कई रिश्ते आये, परंतु वे विवाह के लिए राजी न हुए। माता ने उनके सामने वंश को आगे बढ़ाने की इच्छा प्रकट की तथा नाना ने धर्मग्रंथों के उदाहरणों से गृहस्थ-आश्रम की विशेषता सिद्ध करके और शास्त्रों में से वंश को आगे बढ़ाने के धर्म का विवरण देकर उन्हें विवाह की प्रेरणा देनी चाही, परंतु रणजीत ने संसार की नश्वरता, मनुष्य-जन्म के मूल उद्देश्य आदि का उल्लेख करके बार-बार इस बात पर जोर दिया कि 'मेरा मन प्रभुभक्ति में इतना लीन हो चुका है कि मेरे लिए गृहस्थ-धर्म निभा पाना असंभव है।'

१० वर्ष की अल्पायु में ही रणजीत के हृदय-सागर में प्रभुप्रेम की लहरें पूरे जोर से उठने लगी थीं। वे सदा साधु-संतों की संगति और भजन-मंडलियों में सम्मिलित होने के लिए उत्सुक रहते थे। भूखे-प्यासे, गरीब, लाचारों की सेवा-सहायता में उनकी विशेष रुचि थी। उनका ध्यान एक ही लक्ष्य पर केंद्रित था और वह था परमात्म-प्राप्ति ! प्रभु प्रेम में उनकी आँखों से प्रेमाश्रुओं की झड़ी लगी रहती थी और वे अपने खाने-पीने, पहनने, सोने तक की सुध-बुध खो बैठते थे।

१६ वर्ष की उम्र तक जब अपने प्रयत्नों से प्रभु के दर्शनों की तड़प शांत न हुई तो उनके हृदय में सद्गुरु-मिलन की प्यास जाग उठी। वे सद्गुरु के विरह में पल-पल, क्षण-क्षण व्याकुल रहने लगे।

चातक मीन पतंग जब, पिया बिन नहीं रह पाये।
साध्य को पाये बिना, साधक क्यों रह जाय ॥

वे कभी सद्गुरु की खोज में दूर-दूर तक जाते, कभी नागाओं, सिद्धों, योगियों के पास जाते तो कभी संन्यासियों, उदासियों के पास, परंतु उन्हें कहीं भी शांति प्राप्त न हुई। वे १६ से १९ वर्ष तक सद्गुरु की खोज में दर-दर भटकते रहे। आखिर मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) के पास गंगा-यमुना के दोआबे पर स्थित मोरनातीसा नामक स्थल पर उन्हें एक महात्मा के दर्शन हुए, जिन्हें देखते ही उनके मन में प्रेम, श्रद्धा और शांति की ऐसी प्रबल तरंगें उठीं कि उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उनकी वर्षों की खोज आज पूरी हो गयी है। वे महात्मा और कोई नहीं बल्कि वही शुकदेवजी महाराज थे, जिन्होंने बालक रणजीत को गोदी में बिठाकर प्यार किया था। जिन सद्गुरु की खोज थी वे मिल गये। उस वक्त रणजीत की उम्र १९ वर्ष थी। उन्होंने प्रेममय हृदय और आँसुओं से भरे नेत्रों से सद्गुरु के चरणकमलों में माथा टेकते हुए स्वयं को गुरुचरणों में समर्पित कर दिया। महात्मा शुकदेवजी ने उन्हें विधिवत् दीक्षा दी और उनका परमार्थी नाम श्यामचरनदास रख दिया। शुकदेवजी ने उन्हें दिल्ली वापस जाकर दीक्षा के अनुसार अभ्यास करने की आज्ञा दी। आगे चलकर वे संत चरनदासजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे टूटे हृदय से दिल्ली प्रस्थान कर गये। सद्गुरु से बिछुड़ने के कारण वे बड़े व्याकुल हो गये। दिन भूखे-प्यासे विरह में व्यतीत हो गया, रात्रि को सद्गुरु ने ध्यान

में आकर ढाढ़स बँधाया और कहा :

जब-जब ध्यान करे हो।
ऐसे ही तुम दर्शन पै हो।
अरु हम तुम कभू जुदे जू नाहीं।
तुम मो में मैं तुम्हारे माँही॥

सद्गुरु शिष्य के अंतःकरण में ज्योतिर्मय स्वरूप में सदैव विद्यमान रहते हैं। यह स्वरूप कभी भी शिष्य का साथ नहीं छोड़ता। सद्गुरु-प्रदत्त युक्तियों के अभ्यास से यही ज्योतिर्मय स्वरूप शिष्य को आत्मा-परमात्मा की अभिन्नता का ज्ञान करा देता है। दिल्ली लौटकर चरनदासजी ने बरिम नाले के पास आरामदायक स्थान पर पक्की गुफा बनवा कर उसमें गुरु-आज्ञानुसार तन, मन से अभ्यास शुरू कर दिया। वहाँ उन्होंने १२ वर्ष तक अभ्यास किया। वे कई-कई दिनों तक समाधि में लीन रहते थे। एक बार आस-पास फैली हुई आग गुफा में भी पहुँच गयी, पर ध्यानमग्न चरनदासजी उसी प्रकार गुफा में बैठे रहे। लोगों ने यही समझा कि वे जलकर राख हो गय होंगे, पर जब वे ध्यान से उठकर बाहर आये तो उन्हें सही-सलामत देखकर सभी दंग रह गये।

वे सद्गुरु की आंतरिक प्रेरणा के अनुसार फतेहपुरी में एक आश्रम बनाकर रहने लगे। समाज के हर वर्ग और धर्म के लोग उनके सत्संग में आने लगे। एक बार संत चरनदासजी ने एक गरीब के लड़के की शादी के लिए सोने की ४० मोहरें और बहुत-से सेवकों को उसकी सहायता के लिए भेजा। रात में आश्रम को सुनसान देखकर चोर आ गये, उन्होंने बहुत-से सामान की कई गठरियाँ बांध लीं, परंतु उन्हें आश्रम से बाहर जाने का मार्ग ही नहीं दिखाई दिया। चोरों को परेशान देखकर चरनदासजी ने स्वयं उठकर उन्हें रास्ता दिखाया और सामान ले जाने को कहा। चोर लज्जित होकर क्षमा माँगते हुए कहने लगे : 'अब हम सुई तक नहीं ले जायेंगे।' पर संत चरनदासजी ने उनसे जबरदस्ती गठरियाँ उठवायी और उनके साथ जाकर आश्रम के बाहर छोड़ आये। उन्होंने न कभी किसीका बुरा सोचा और न ही किसीको कुछ बुरा कहा। यदि कोई उनकी निंदा भी करता तो वे कहते कि निदंक शत्रु नहीं अपितु सच्चा मित्र है, जो निंदा के साबुन से हमारे दुर्गुणरूपी मैल को धोता है। उनके परम शिष्य रामरूपजी ने लिखा है : 'संत चरनदासजी कभी भी वाद-विवाद में नहीं उलझते थे। वे एंकात-प्रेमी थे और बार-बार कहते थे कि मैं तो बुरे-से-बुरा था पर मेरे सद्गुरु शुकदेवजी ने मुझ पर कृपा करके मेरा बेड़ा पार कर दिया।'

किसू काम के थे नहीं, कोई न कौड़ी देय।
गुरु शुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह॥

संत चरनदासजी ने दिल्ली में कई आश्रम बनवाये तथा फतेहपुरी आश्रम में ५ वर्ष बिताये। फतेहपुर निवास के समय वे एक बार वृंदावन गये थे। मार्ग में ७ ठगों ने उन्हें घेर लिया, परंतु उनकी अमीदृष्टि से वे स्वयं को ठगाकर उनके अनन्य भक्त बन गये। उनके १०८ प्रमुख शिष्यों में इन सातों के नाम भी आते हैं। इसी यात्रा के दौरान उन्हें पुनः सद्गुरुजी के दर्शन प्राप्त हुए। गुरुदेव ने उन्हें भक्तिमार्ग का प्रचार करने की आज्ञा दी। यहाँसे लौटकर उन्होंने घासमंडी में आश्रम बनवाया। वहाँ एक वर्ष व्यतीत कर वे परीक्षितपुर आ गये। वहाँ नंददासजी उनसे विधिवत् दीक्षा लेनेवाले प्रथम शिष्य बने। नंददासजी के बाबा हरिदासजी ने अपनी पत्नी, चारों पुत्रों और एकमात्र पुत्री सहजोबाई सहित यहीं पर दीक्षा प्राप्त की। सहजोबाई, दयाबाई और नूपीबाई संत चरनदासजी की तीन प्रमुख शिष्याएँ थीं।

बाद में वे परीक्षितपुर से गद्दनपुर चले गये। वहाँ पर एक मुसलमान फकीर मुहम्मद बाकर ने उनकी शरण ग्रहण की और वहाँसे वे पानीपत आ पहुँचे, यहाँ का नवाब शाकर खाँ और एक खतरनाक डाकू उनके शिष्य बन गये। उन्होंने उस डाकू का नाम रामधड़ल्लामल रखा। इसी यात्रा के दौरान सन् १७५७-५८ ई. में चरनदासजी की माता का देहांत हो गया। माता के परलोक गमन के पश्चात् वे सुखदेवपुर आ गये। यह स्थान चाँदनी चौक के पास मुहल्ला बन्नीमारां और हौजकाजी के मध्य स्थित है। चरनदासजीने अनेक स्थानों की यात्रा

की, परंतु उनका कार्यक्षेत्र दिल्ली व उसके आस-पास का क्षेत्र ही रहा।

उन्होंने नादिरशाह के भारत पर आक्रमण के छः महीने पूर्व ही उसके आक्रमण की तिथि, मुहम्मदशाह की हार, नादिरशाह द्वारा राज्य वापस देकर लौट जाने की तिथि आदि कई महत्त्वपूर्ण बातों की जानकारी अपने सेवकों को दी थी। उनकी इस भविष्यवाणी को सुनकर नादिरशाह ने उन्हें जेल में डाल दिया, परंतु उस समय उसके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही, जब उसी रात को चरनदासजी ने नादिरशाह के सिर पर पदाघात कर उसे जगा दिया। आश्चर्यचकित व भयभीत नादिरशाह उनके चरणों में गिर क्षमायाचना करने लगा तथा कई गाँवों की जागीरें व धन-सम्पत्ति उनके नाम कर दी। वे न तो किसी सेवक के घर भोजन करते थे और न ही किसीसे धन, वस्त्रादि की भेंट लेते थे, परंतु जरूरतमंदों की भरपूर सहायता करते थे। उनका यह क्रम ६० वर्ष की अवस्था तक चला, तत्पश्चात् उन्होंने शिष्यों की अत्यधिक संख्या और उनकी व्यवस्था हेतु सेवा-भेंट लेना स्वीकार किया, परंतु उसमें से अपने लिए एक पाई का भी उपयोग नहीं किया। उन्होंने ब्रह्मलीन होने के एक वर्ष, तीन महीने व दों दिन पहले ही अपने परम धाम जाने के संकेत दे दिये थे। वे उन दिनों फतेहपुरी स्थित सुखदेवपुरा आश्रम में निवास करते थे। संवत् १८३९ विक्रमी, मार्गशीर्ष सप्तमी को बुधवार के दिन वे ७९ वर्ष की आयु पूरी कर स्वधाम पधार गये। उन्होंने स्वधाम जाने की इच्छा पहले ही प्रकट कर दी थी, फिर भी उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया। बाद में उनके १०८ शिष्यों ने अपनी अलग-अलग गद्दियाँ चलायीं जिनमें रामरूप, सहजोबाई, जुगतानंद आदि की गद्दियाँ प्रमुख थीं। चरनदासजी के शिष्यों ने अपनी रचनाओं में उनकी अलौकिक प्रतिभा व जीवन के विषय में विस्तार से गाया है। सहजोबाई ने तो यहाँ तक कहा कि :

साँईं चरनदास पर तन मन वारूँ।
गुरु न तजूँ, पर हरि को तजि डारूँ।

(सहजोवाणी : पृष्ठ ३)

स्त्रीपर्व [*महाभारत से संक्षिप्त*]

(गतांक का शेष)

शोकमग्न राजा धृतराष्ट्र को महर्षि व्यास का समझाना

श्रीवैशम्पायनजी कहते हैं : ''राजन्! विदुर के ये वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र पुत्रशोक से व्याकुल हो मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उन्हें इस प्रकार अचेत होकर गिरते देख श्रीव्यासजी, विदुर, संजय, सुहृद्गण और जो विश्वासपात्र द्वारपाल थे, वे शीतल जल के छींटे देकर ताड़ के पंखो से हवा करने लगे और उनके शरीर पर हाथ फेरने लगे। इस प्रकार उनके बहुत देर तक उपचार करने पर राजा को चेत हुआ और वे पुत्रशोक से व्याकुल होकर विलाप करने लगे : 'मनुष्यजन्म को धिक्कार है! इसमें भी विवाहादि करके परिवार बढ़ाना तो बड़े ही दुःख की बात है। इसीके कारण बार-बार तरह-तरह के दुःख पैदा होते हैं। पुत्र, धन, सुहृद् और सम्बन्धियों का नाश होने पर विष और अग्नि के दाह के समान बड़ा ही दुःख भोगना पड़ता है। उस दुःख से शरीर में जलन होने लगती है और बुद्धि नष्ट हो जाती है। ऐसी आपत्ति में फँसने पर तो मनुष्य को जीवित रहने की अपेक्षा मौत ही अच्छी मालूम होती है। इसलिए आज मैं भी अपने प्राणों को त्याग दूँगा।'

महात्मा व्यासजी से ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्र अत्यन्त शोकाकुल हो गये और अपने पुत्रों के ही चिंतन में डूबकर वे मौन हो गये। तब भगवान व्यास ने उनसे कहा : 'धृतराष्ट्र! तुमने सब शास्त्र सुने हैं। तुम बुद्धिमान हो तथा धर्म और अर्थ के साधन में कुशल हो। मनुष्यों का जीवन सदा

रहनेवाला नहीं है – यह तो तुम निःसन्देह जानते ही हो। यह मर्त्यलोक अनित्य है, परमपद नित्य है और जीवन का पर्यवसान मरण में ही होता है – यह सब जानकर भी तुम शोक क्यों करते हो ? इस वैर का प्रादुर्भाव तो तुम्हारे सामने ही हुआ था। तुम्हारे पुत्र को कारण बनाकर काल ने ही इसे अंकुरित किया था। राजन् ! यह कौरवों का विध्वंस तो होना ही था। फ़िर तुम उन शूरवीरों के लिए क्यों शोक करते हो ? उन सबने तो परमगति प्राप्त कर ली है। पुराने समय की बात है, एक बार मैं इन्द्र की सभा में गया था। वहाँ मैंने सब देवताओं को इकट्ठे हुए देखा। उस समय एक विशेष प्रयोजन से पृथ्वी उनके पास आयी और उनसे कहने लगी : 'देवगण ! आपलोगों ने मेरा जो काम करने के लिए ब्रह्माजी की सभा में प्रतिज्ञा की थी, उसे अब शीघ्र ही पूरा कर दीजिये ।' उसकी यह बात सुनकर भगवान विष्णु ने कहा : 'राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में जो सबसे बड़ा दुर्योधन है, वह तेरा काम करेगा। उसके निमित्ति से अनेकों राजा कुरुक्षेत्र में आकर अपने सुदृढ़ शस्त्रों के प्रहार से एक-दूसरे का संहार कर डालेंगे। इस प्रकार उस युद्ध में तेरा सारा भार उतर जायेगा। अब तू शीघ्र ही जा और सब लोकों को धारण कर।'

'राजन् ! तुम्हारा पुत्र जो दुर्योधन था, उसके रूप में कलि के अंश ने ही गान्धारी के गर्भ से जन्म लिया था। इसीसे वह ऐसा असहनशील, चंचल, क्रोधी और कूटनीति से काम लेनेवाला था। दैवयोग से उसके भाई भी ऐसे ही उत्पन्न हुए और मामा शकुनि तथा परम मित्र कर्ण भी ऐसे ही मिल गये। ये सब पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही एक साथ उत्पन्न हुए थे। जैसा राजा होता है, वैसी ही प्रजा भी होती है। यदि स्वामी धार्मिक हो तो अधर्मी सेवक भी धार्मिक बन जाते हैं। सेवकों की प्रवृत्ति स्वामी के गुण-दोषों के अनुसार होती है, इसमें संदेह नहीं। राजन् ! दुष्ट राजा का संसर्ग होने से ही तुम्हारे और पुत्र भी मारे गये। इस बात को देवर्षि नारद जानते हैं। आपके पुत्र अपने ही अपराध से मारे गये हैं। तुम उनके लिए शोक मत करो, क्योंकि इस संबंध में शोक करने का कोई कारण नहीं है। पाण्डवों ने तुम्हारा जरा-भी अपराध नहीं किया है। वास्तव में तो तुम्हारे पुत्र ही दुष्ट थे, उन्हींने इस देश का नाश कराया है। पहले राजसूय यज्ञ के समय देवर्षि नारद ने राजा युधिष्ठिर की सभा में कहा था कि 'राजन् ! तुम्हें जो कुछ करना हो, वह कर लो। एक समय ऐसा आयेगा कि सारे कौरव-पाण्डव आपस में युद्ध करके नष्ट हो जायेंगे।' नारदजी की यह बात सुनकर उस समय पाण्डवों को बड़ा शोक हुआ था। इस प्रकार मैंने तुम्हें यह देवसभा का पुरातन गुप्त वृत्तान्त सुनाया है। इसे सुनाने में मेरा यही उद्देश्य है कि किसी प्रकार तुम्हारा शोक दूर हो जाय तथा इस युद्ध को दैवी योजना समझकर तुम पाण्डुपुत्रों पर स्नेह करने लगो। यही बात मैंने एकान्त में युधिष्ठिर से भी कही थी। इसीसे उन्होंने कौरवों के साथ युद्ध रोकने का इतना प्रयत्न किया था। परंतु दैव बड़ा प्रबल है। इस जगत के चराचर प्राणियों के साथ काल का जो संबंध है, उसे कोई टाल नहीं सकता। राजन् ! तुम तो बड़े धर्मात्मा और बुद्धिमान हो, तुम्हें प्राणियों के जन्म-मरण के रहस्य का भी पता है। फिर मोह में क्यों फँसते हो ? राजा युधिष्ठिर को यदि मालूम हो गया कि तुम अत्यन्त शोकातुर हो और बार-बार घबराकर अचेत हो जाते हो तो वे प्राण त्याग देंगे। वीरवर युधिष्ठिर तो सर्वदा पशु-पक्षियों पर भी कृपा करते हैं, फिर वे तुम्हारे प्रति दयाभाव क्यों नहीं रखेंगे। अतः मेरी आज्ञा मानकर और विधि का विधान टल नहीं सकता ऐसा समझकर तथा पाण्डवों पर करुणा करके तुम अपने प्राण धारण करो। ऐसा बर्ताव करने से संसार में तुम्हारी कीर्ति होगी, धर्म और अर्थ की प्राप्ति होगी और दीर्घकालिक तपस्या का फल मिलेगा। तुम्हें जो प्रज्वलित अग्नि के समान पुत्रशोक उत्पन्न हुआ है, उसे विचाररूप जल से सर्वदा शांत करते रहो।'

अतुलित तेजस्वी व्यासजी के ये वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने कुछ देर विचार किया, इसके बाद वे बोले : 'द्विजवर ! मुझे महान शोकजाल ने सब ओर से जकड़ रखा है, मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है और बार-बार मूर्च्छा-सी आ जाती है। अब आपका यह उपदेश सुनकर मैं प्राण धारण करता हुआ यथासम्भव शोक न करने का प्रयत्न करूँगा।'

राजा धृतराष्ट्र के ये वचन सुनकर सत्यवतीनन्दन भगवान व्यास वहीं अन्तर्धान हो गये।

जालन्दरनाथ

कुरुवंश में एक अत्यंत प्रसिद्ध राजा जन्मेजय थे। उनकी सातवीं पीढ़ी के राजा का नाम बृहद्रवा था। बृहद्रवा की रानी का नाम सुलोचना था। वे हस्तिनापुर पर राज्य करते थे। राजा बृहद्रवा ने सोमयाग करने का विचार किया। तदनुसार राजगुरु ने एक शुभ मुहूर्त निश्चित किया। उस शुभ मुहूर्त में यज्ञ आरम्भ किया गया। चारों ओर वेदमंत्रों की ध्वनियाँ गूँजने लगीं, सभी नगरवासियों के हृदय में प्रसन्नता छा गयी। सोमयाग की पूर्णाहुति के बाद जब ब्राह्मण यज्ञकुंड में से भस्म निकालने लगे, तब उनके हाथ का स्पर्श होते ही भस्म के भीतर से बालक के रोने की आवाज आयी। ब्राह्मणों ने बालक को बाहर निकाला। बालक का स्वरूप अत्यंत दिव्य और परम तेजस्वी था उस बालक को देखकर सभी लोग आश्चर्य करने लगे कि अग्निकुंड की प्रज्वालित अग्नि में यह बालक कैसे जीवित रहा होगा ? एक ब्राह्मण ने राजा से कहा : ''महाराज ! यज्ञकुंड से यह तेजःपुंज बालक प्रसादरूप में मिला है।'' यज्ञकुंड के भीतर से निकले हुए अयोनिज जीवित बालक को ब्राह्मणों ने राजा बृहद्रवा को सौंप दिया। रानी सुलोचना ने राजा से पूछा : ''यह बालक किसका है ?'' राजा ने बालक को रानी की गोद में देते हुए कहा : ''भगवान अग्निदेव ने हमें सोमयाग की प्रसादी के रूप में यह बालक दिया है। मीनकेत की तरह यह भी अपना पुत्र है।''

रानी सुलोचना बालक को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई और उसने बालक को अपने हृदय से लगा लिया। पुत्रस्नेह के कारण उसी समय रानी के स्तनों से दूध की धार बहने लगी। रानी ने बालक को स्तन-पान कराया।

१२ दिन बाद उत्सव मनाकर बालक का नामकरण किया गया। यज्ञकुंड में अग्नि की ज्वालाओं में भी बालक जीवित रहा, अग्निदेव की प्रसादी के रूप में उसका जन्म हुआ, इसलिए उस बालक का नाम 'जालन्दर' रखा गया। उस समय राजा ने प्रसन्नचित्त से ब्राह्मणों और याचकों को खूब दान दिया।

बालक जालन्दर चंद्रमा की कलाओं की भाँति बढने लगा। राजा-रानी दोनों ही उस परम तेजस्वी बालक को देखकर अत्यंत प्रसन्न होते थे और अपने भाग्य की सराहना करते थे। मीनकेत भी अपने छोटे भाई जालन्दर से बहुत प्रेम करता था। दोनों भाई प्रेमपूर्वक साथ-साथ विद्याभ्यास करते थे।

जालन्दर की वैराग्य-वृत्ति दिन-प्रतिदिन अधिक बढ़ने लगी। राजसी सुख-वैभव उसे पसंद नहीं था।

राजा के मन में युवक जालन्दर का विवाह करने का विचार आया। राजा ने योग्य कन्या की तलाश करने के लिए अपने प्रधान मंत्री और राजगुरु को आज्ञा दी। आज्ञानुसार वे दोनों राजधानी हस्तिनापुर से बाहर गये।

जालन्दर धर्म-चर्चा करने के लिए प्रतिदिन राजगुरु के घर जाया करते थे, परंतु जब राजगुरु कन्या की तलाश में प्रधान मंत्री के साथ हस्तिनापुर से बाहर गये और कई दिनों तक नहीं लौटे, तब एक दिन जालन्दर ने अपनी माता रानी सुलोचना से पूछा : ''मातुश्री ! राजगुरु और प्रधान मंत्री कहाँ गये हैं, आजकल वे दिखाई नहीं देते ?''

तब रानी सुलोचना ने कहा : ''हे पुत्र ! तुम्हारे लिए राजा की आज्ञा से कन्या ढूँढ़ने गये हैं ताकि तुम्हारा विवाह कराया जा सके।''

जालन्दर ने पूछा : ''माता ! कन्या किसे कहते हैं ?''

रानी ने कहा : ''जिस लड़की का विवाह न हुआ हो, उसे कन्या कहा जाता है।''

जालन्दर ने फिर पूछा : ''और विवाह किसे कहते हैं ?''

रानी ने कहा : ''वर-वधू के धर्मानुसार एक सूत्र में बँधने की क्रिया को विवाह कहते हैं।''

जालन्दर ने पूछा : ''वधू कैसी होती है ?''

रानी ने कहा : ''वधू मेरे जैसी होती है। जैसी मैं हूँ, वैसी तेरे लिए भी दुलहन आयेगी।'' जालन्दर इन बातों से अंजान है यह जानकर रानी को आश्चर्य हुआ। माँ की बातें सोचते हुए जालन्दर वहाँसे उठकर तुरन्त 'गुरु उद्यान' में पहुँचे, वहाँ अपने मित्रों के साथ खेलते-खेलते ज़ालन्दर ने उन्हें बताया कि मेरे माता-पिता मेरे लिए दुलहन ला रहे हैं। दुलहन किसलिए लाते हैं, मुझे पता नहीं है। अगर आप लोगों को पता हो तो मुझे बताइये।

साथियों को जालन्दर की बात सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। उन्हें यह अनुमान भी नहीं था कि इतना बड़ा हो जाने पर भी जालन्दर को इन बातों का जरा भी ज्ञान नहीं है।

साथियों ने जालन्दर से कहा : ''दुलहन आयेगी, विवाह होगा, शहनाइयाँ बजेंगी और उत्सव मनाया जायेगा।''

जालन्दर ने पूछा : ''परंतु उससे मुझे क्या लाभ होगा ?''

साथियों ने कहा : ''एक सुन्दर दुलहन मिल जायेगी।''

जालन्दर ने कहा : ''दुलहन का मैं क्या करूँगा ?''

साथी बोले : ''उससे संतानें होंगी। आप उनके पिता बनेंगे। इस प्रकार वंश की वृद्धि होगी।''

उसी समय जालन्दर का विवेक जागृत हुआ और सोचने लगे कि 'यह जगत कितना अधम है ? जिस विवाह के कारण इतने झंझटों में फँसना पड़ेगा, वह कार्य मैं कभी नहीं करूँगा।'

जालन्दर इस प्रकार विचार करते हुए अपने साथियों में से उठे और दूर बैठकर सोचने लगे। माता सुलोचना के शब्दों का उसे स्मरण होने लगा। सोचते-सोचते जालन्दर की वैराग्य-वृत्ति और भी जोर पकड़ने लगी। उन्होंने गृहत्याग का निश्चय किया और वहाँसे उठकर सीधे वन की ओर चल पड़े।

कुछ नगरवासियों ने उसे नगर के बाहर जाते हुए देखा, परंतु राजकुमार है इस भय से वे कुछ बोल नहीं पाये। लेकिन जिसने भी राजकुमार को जाते हुए देखा, वे सभी दौड़कर राजा के पास गये और बताया कि हमने राजकुमार जालन्दर को नगर के बाहर जाते हुए देखा है। यह सुनकर राजा चौंक गये। उन्होंने जालन्दर को ढूँढ़ने के लिए अपने कई सेवक भेजे। राजा-रानी को बहुत चिंता होने लगी। दूर-दूर तक गये हुए सेवकों ने लौटकर राजा को यही बताया कि 'राजकुमार जालन्दर नहीं मिले।'

जैसे, अमावस्या के दिन चंद्रदर्शन न होने से सब जगह अँधेरा छा जाता है, वैसे ही जालन्धर के न मिलने से राजा, रानी और प्रजाजनों के हृदय में निराशारूपी अँधेरा छा गया। राजा-रानी सोचने लगे कि अग्निदेव का प्रसादरूपी चैतन्य-रत्न हमारे हाथ से चला गया। दोनों विलाप करने लगे, राजा का एक सरदार बुद्धिशाली था। उसने राजा को समझाने का प्रयास करते हुए कहा : ''राजन् ! जालन्दर तो अयोनिज अवतार हैं, वे ईश्वर के अंशावतार हैं। इसलिए काल का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। आप चिंता न करें। जब तक वे नहीं मिलते, तब तक हम उन्हें ढूँढ़ने का प्रयास जारी रखेंगे, कभी-न-कभी तो मिल ही जायेंगे। आप धीरज रखिये...।'

आखिर दोनों को धैर्य धारण करना पड़ा। उधर जालन्दर उत्तर दिशा की ओर चलते-चलते गहन वन में जा पहुँचे। उस समय रात हो जाने के कारण वे जंगल में ही एक वृक्ष के नीचे सो गये। उसी रात को जंगल में दावानल फैल गया। वह अग्नि वन के वृक्षों को जलाती हुई उसी जगह पर आ पहुँची, जहाँ जालन्दर सो रहे थे।

जालन्दर को वहाँ सोते देखकर अग्निदेव को राजा बृहद्रवा के सोमयाग का स्मरण हुआ कि 'यह जालन्दर तो मेरा ही पुत्र है। मैंनें ही सोमयाग के समय यज्ञकुंड में गर्भ डाला था। उसी में से जालन्दर का जन्म हुआ था। यह वही मेरा पुत्र है, परंतु जालन्दर का इस अरण्य में आने का क्या कारण होगा ?'

इस प्रकार सोचते हुए अग्निदेव शांत हुए और अपने अग्निरूप को समेटकर देवरूप धारण करके जालन्दर के पास आकर उसे जगाया । जालन्दर ने उठते ही आश्चर्यचकित होकर पूछा कि 'आप कौन हैं ?'

अग्निदेव ने कहा : ''मैं अग्निदेवता हूँ। मैं ही तुम्हारा माता-पिता हूँ।''

जालन्दर ने कहा : ''मैं तो राजा बृहद्रवा का पुत्र हूँ। मेरी माता तो रानी सुलोचना है। आप मेरे माता-पिता किस प्रकार हुए ?''

तब अग्निदेव ने जालन्दर को उनकी जन्म-कथा का सम्पूर्ण वृत्तांत सुनाया।

अग्निदेव ने पूछा : ''जालन्दर इस घोर अरण्य में तुम्हारा अकेले आने का क्या कारण है ? तुम क्या चाहते हो ?''

जालन्दर ने कहा : ''मैं सांसारिक बंधनों में बँधना नहीं चाहता । मैं अपने जीवन को सार्थक करना चाहता हूँ, मैं चिरंजीवी होना चाहता हूँ। आप मेरे माता-पिता हैं, अतः आप ही मेरी सहायता करें। अगर यह मानव-देह प्राप्त होने पर भी जीवन सार्थक न हुआ तो मेरा जन्म लेना भी व्यर्थ ही जायेगा। कृपया मेरे इस जीवन को सार्थक कर दीजिये।''

अपने पुत्र जालन्दर की बातें सुनकर पिता अग्निदेव अत्यंत प्रसन्न हुए । वे जालन्दर को गिरनार पर्वत पर भगवान दत्तात्रेयजी के पास ले गये । पिता-पुत्र दोनों ने उनको साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया । अग्निदेव को देखकर दत्तात्रेयजी हर्षित हुए और उन्हें आलिंगन किया।

दत्तात्रेयजी ने दोनों को आर्शीवाद देकर आसन पर बिठाया और अग्निदेव से पूछा : ''यह बालक कौन है ?''

अग्निदेव ने जालन्दर के जन्म का सम्पूर्ण वृत्तांत सुनाया और नम्रतापूर्वक प्रार्थना की 'भगवन् ! आप मेरे इस पुत्र को नाथ पंथ की दीक्षा देकर इसका जीवन सार्थक कीजिये।'

दत्तात्रेयजी ने अग्निदेवता की प्रार्थना स्वीकार की । अग्निदेव दत्तात्रेयजी के पास जालन्दर को छोड़कर वहाँ से चले गये। दत्तात्रेयजी ने जालन्दर को नाथ पंथ की दीक्षा देकर उसका नाम 'जालन्दरनाथ' रखा। शास्त्राध्ययन के साथ-साथ अन्य सभी विद्याओं में भी जालन्दर को पारंगत किया। उसके बाद गुरु-शिष्य दोनों ने साथ रहकर १२ वर्ष तक तीर्थाटन किया । तीर्थयात्रा करते-करते दत्तात्रेयजी जालन्दरनाथ को बदरिकाश्रम ले गये। वहाँ उन्हें १२ वर्ष तक तपस्या करने की आज्ञा दी। तपस्या पूरी होने के बाद वे जालन्दरनाथ को शिवजी के पास ले गये । शिवजी सहित अन्य देवताओं ने श्री जालन्दरनाथ को आशीर्वाद दिये।

शिवजी ने अग्निदेवता को बुलाकर तीन दिन तक पिता-पुत्र को अपने पास रखा और जालन्दरनाथ द्वारा कनिकानाथ का प्रागट्य करवाया।

निर्भयतापूर्वक, दृढ़तापूर्वक, ईमानदारी और निःशंकता से अपनी असली चेतना को जगाओ । कब तक तुम शरीर में सोते रहोगे ?

साधना के रास्ते पर हजार-हजार विघ्न होंगे, लाख-लाख काँटे होंगे । उन सबके ऊपर निर्भयतापूर्वक पैर रखेंगे । वे काँटे फूल न बन जाएँ तो हमारा नाम 'साधक' कैसे ? ॐ... ॐ... ॐ...

हजारों-हजारों उत्थान और पतन के प्रसंगों में हम अपनी ज्ञान की आँख खोले रहेंगे । हो होकर क्या होगा ? इस मुर्दे शरीर का ही तो उत्थान और पतन गिना जाता है । हम तो अपनी आत्म-मस्ती में मस्त हैं ।

बिगड़े तब जब हो कोई बिगड़नेवाली शय।
अकाल अछेद्य अभेद्य को कौन वस्तु का भय ॥

साधक वह है कि जो हजार विघ्न आयें तो भी न रुके, लाख प्रलोभन आएँ तो भी न फँसे। हजार भय के प्रसंग आएँ तो भी भयभीत न हो और लाख धन्यवाद मिले तो भी अहंकारी न हो । उसका नाम साधक है । साधक का अनुभव होना चाहिए कि :

हमें रोक सके ये जमाने में दम नहीं ।
हम से जमाना है जमाने से हम नहीं ॥

- आश्रम की 'ईश्वर की ओर' पुस्तक से

राजा रुक्मांगद की एकादशी व्रत-निष्ठा

प्राचीन काल में वैदिश नगर में रुक्मांगद नाम के प्रसिद्ध विष्णुभक्त तथा एकादशी-व्रत पालन में तत्पर राजा हो गये। ज्येष्ठ रानी संध्यावली से उन्हें धर्मांगद नाम का पुत्र था। धर्मात्मा राजा रुक्मांगद ने लोक-कल्याण हेतु अपने राज्य में यह घोषणा करवा दी कि 'एकादशी के दिन जो मनुष्य अन्न ग्रहण करेगा, वह चाहे मेरा सगा-संबंधी, मित्र ही क्यों न हो उसे कठोर दंड दिया जायेगा।' राजा द्वारा इस प्रकार घोषणा कराने पर सब लोग एकादशी व्रत का पालन कर भगवान विष्णु के लोक में जाने लगे। इस प्रकार उसके राज्य में जो भी मृत्यु को प्राप्त होते थे वे सभी एकादशी व्रत के प्रभाव से अकेले नहीं अपितु अपने पितरों के पितरों को भी वैकुण्ठधाम ले जाते थे। जिससे सम्पूर्ण नरक सूना हो गया और सूर्यनंदन यम दयनीय स्थिति में पहुँच गये।

यमराज शोक-संतप्त हो ब्रह्माजी की शरण में गये तथा उनसे राजा रुक्मांगद के एकादशी व्रत भंग होने की याचना करने लगे, जिससे उनका नरक फिर से भर जाय। ब्रह्माजी ने यमराज की इच्छा-पूर्ति ओर भक्त रुक्मांगद का गौरव बढ़ाने के लिए एक सुंदर नारी को प्रकट किया। वह नारी सम्पूर्ण कलाओं से युक्त तथा तीनों लोकों को मोहित करनेवाली थी। ब्रह्माजी ने उसे राजा रुक्मांगद को मोहित कर एकादशी व्रत-भंग करने का आदेश दिया। उसके गुण के अनुरूप ही उसका नाम 'मोहिनी' रखा। ब्रह्माजी का आदेश पाकर मोहिनी मंदराचल पर्वत पर पहुँची। राजा रुक्मांगद से मिलने की इच्छा रखकर 'वृषलिंग' नामक शिवलिंग के समीप शिला पर बैठकर उत्तम संगीत का गान करने लगी।

एक दिन राजा रुक्मांगद राज्य-व्यवस्था देखते हुए हिंसक जंतुओं से प्रजा की रक्षा हेतु वन में गये। वन में विचरण करते हुए महर्षि वामदेवजी के आश्रम में जा पहुँचे। उन्होंने महर्षि का दर्शन कर आदर पूर्वक प्रणाम किया। महर्षि ने प्रसन्न होते हुए राजा से कुशलक्षेम पूछा और उनका यथोचित सत्कार किया। तदनंतर राजा ने हाथ जोड़कर हर्षभरी वाणी से विप्रवर वामदेवजी से अपने यश, सम्पत्ति, अनुकूल व सुशील पत्नी तथा पुत्र और राज्यसुख किस विशेष पुण्यकर्म के कारण हैं, इनके विषय में जानने की इच्छा प्रकट की।

राजा का अभिप्राय जान महर्षि ने क्षणभर शांत होकर कहा : ''राजन्! तुम पूर्व जन्म में शुद्र जाति में उत्पन्न, कुलटा स्त्री तथा दरिद्रता से संतप्त पुरुष थे। संयोगवश तुमने किसी ब्राह्मण के संसर्ग से तीर्थयात्रा करते हुए मथुरापुरी में, यमुनाजी के विश्रामघाट नामक तीर्थ में स्नान कर भगवान वराह के मंदिर में ''अशून्यशयन व्रत' की पौराणिक कथा सुनी थी तथा घर लौटकर अशेष पापराशि का नाश करनेवाले, अभ्युदय प्रदान करनेवाले तथा मेघ के समान श्यामवर्ण देवेश्वर भगवान विष्णु को प्रसन्न करनेवाले 'अशून्यशयन व्रत' का पालन किया था जिसके फलस्वरुप तुम्हें इस जन्म में सम्पूर्ण सुख प्राप्त हुआ है। राजन्! इस जन्म में भी तुम व्रतों में श्रेष्ठ एकादशी व्रत का नियमितरूप से पालन करते हो, इससे तुम्हें निश्चित रूप से भगवान विष्णु का सायुज्य प्राप्त होगा।''

यह सुन राजा रुक्मांगद प्रसन्नचित्त हो मुनि से आज्ञा लेकर आगे की यात्रा पर चल पड़े। मार्ग में अनेकानेक पर्वत, वन, नदी आदि देखते हुए राजाधिराज रुक्मांगद थोड़े ही समय में श्वेतगिरि, गंधमादन और महामेरु पर्वत लांघकर उत्तर कुरुवर्ष को देखते हुए मंदराचल पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने पशु-पक्षियों के समुदाय को संगीत की ध्वनि से खिंचकर शीघ्रतापूर्वक एक ओर जाते हुए देखा। उनको जाते देख राजा रुक्मांगद स्वयं उस ध्वनि से खिंचकर उस शिला के निकट जा पहुँचे, जहाँ मोहिनी सुंदर स्वर में गीत अलाप रही थी। राजा

उसकी रूप-लावण्यता पर मोहित होकर मूर्च्छित हो गये। मोहिनी द्वारा उठाने का प्रयत्न करनेपर राजा ने आँखे खोलकर कहा : ''मुझपर कृपा करो। तुम्हारे मन में जो भी अभिलाषा होगी, वह सब मैं तुम्हें दूँगा। मैं सम्पूर्ण पृथ्वी को तुम्हारी सेवा में दे दूँगा।''

मोहिनी ने कहा : ''राजन् ! मैं ब्रह्माजी की पुत्री हूँ। आपकी कीर्ति सुन आपको ही पाने के लिए और आपमें मन लगाकर भगवान शिव का संगीत द्वारा पूजन कर रही थी, जिसके फलस्वरूप मैंने आपको शीघ्र ही पा लिया है।''

राजा रुक्मांगद ने मोहिनी से विधिपूर्वक विवाह किया। मोहिनी के प्रेम से अत्यधिक मुग्ध होने पर भी राजा एकादशी व्रत की अवहेलना नहीं करते थे। दशमी, एकादशी, द्वादशी - इन तीन दिनों तक राजा रतिक्रीड़ा को त्याग देते थे। इस प्रकार उन्हें क्रीड़ा करते हुए बहुत समय बीत गया। तभी परम मंगलमय श्रेष्ठ कार्तिक मास आ पहुँचा, जो भगवान विष्णु की निद्रा दूर करनेवाला परम पुण्यदायक मास है।

कार्तिक मास को आया देख राजा रुक्मांगद ने मोहिनी से कहा : ''देवि ! तुम्हारे प्रति आसक्ति होने के कारण मेरे बहुत-से कार्तिक मास व्यर्थ बीत गये। कार्तिक में मैं एकादशी को छोड़कर और किसी दिन व्रत न कर सका। अतः इस बार मैं व्रत का पालन करते हुए कार्तिक मास में भगवान की उपासना करना चाहता हूँ। देवि ! कार्तिक मास में एकभुक्त या अयाचित व्रत द्वारा प्राप्त हुए अन्न का दिन या रात में केवल एक बार भोजन करनेवाले व्रती को सप्त द्वीपों सहित यह पृथ्वी प्राप्त होती है। कार्तिक में एकादशी का दिन तथा भीष्मपंचक दोनों अधिक पुण्यकारी माने गये हैं। देवि ! मनुष्य चाहे पापों से भरा हुआ हो, यदि वह रात्रि-जागरणसहित प्रबोधिनी एकादशी का व्रत करे तो फिर कभी माता के गर्भ में नहीं आता। कार्तिक मास में तैल, मधु तथा स्त्रीसेवन का त्याग करनेवाला वर्षभर के पाप से छूट जाता है। कार्तिक में ली हुई दीक्षा मनुष्यों के जन्मरूपी बंधन का नाश करनेवाली है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके कार्तिक में दीक्षा लेनी चाहिए। जो व्यक्ति कार्तिक मास की पूर्णिमा तथा शुक्लपक्ष की एकादशी का व्रत रखता है, वह भगवान विष्णु के धाम में जाता है। अतः मैं कार्तिक मास में समस्त पापों के नाश तथा तुम्हारे प्रति प्रीति की वृद्धि के लिए व्रत-पालन करूँगा।''

यह सुन मोहिनी बोली : ''राजन् ! गर्भिणी स्त्री, गृहस्थ पुरुष, क्षीणकाय रोगी, शिशु, वलिगात्र (झुर्रियों से भरा हुआ शरीर), यज्ञ के आयोजन के लिए उद्यत पुरुष और संग्रामभूमि में रहनेवाले योद्धा तथा पतिव्रता स्त्री इन सबके लिए निराहार व्रत करना उचित नहीं है। अतः आपका एकादशी के दिन व्रत करना उचित नहीं है। राजन् ! जब आप एकादशी को भोजन कर लेंगे, तभी मुझे प्रसन्नता होगी तथा पहले भी मंदराचल पर्वत पर आपने मुझे दाहिना हाथ देकर प्रतिज्ञा की थी कि मैं जो कुछ कहूँ आप उसका निःशंक होकर पालन करेंगे। अतः अब आप मुझे यही वर दीजिये कि आप एकादशी के दिन उपवास न कर भोजन करेंगे। यदि आप वर नहीं देंगे तो असत्यवादी होकर घोर नरक में जायेंगे और एक कल्प तक उसीमें पड़े रहेंगे।''

यह सुन राजा ने कहा : ''कल्याणी ! ऐसी बात न कहो। तुम ब्रह्माजी की पुत्री होकर धर्म में विघ्न क्यों डालतीं हो ? अमावस्या के दिन मैथुन करने पर जो पाप होता है, चतुर्दशी को हजामत करवाने से मनुष्य में जिस पाप का संचार होता है तथा षष्ठी को तेल खाने या लगाने से जो दोष होता है, वे सब दोष एकादशी को भोजन करनेवाले को आ प्राप्त होते हैं। मैं एकादशी को पापमय भोजन कैसे करूँगा ? तुमने जो बात कही वह पुराण-सम्मत नहीं है। विद्वानों ने क्षीणकाय पुरुषों के लिए एकादशी के दिन फल, मूल, दूध और जल को अनुकूल तथा भोज्य बताया है, जो लोग ज्वर आदि रोगों से पीड़ित हैं, उनके लिए तो उपवास और भी उत्तम बताया गया है। एकादशी को किसी भी महापुरुष ने अन्न का भोजन करने के लिए नहीं कहा है। अतः तुम मुझसे भोजन करने के लिए आग्रह न करो।''

मोहिनी ने आग्रह करते हुए वेद-विद्या के पारंगत ब्राह्मणों को बुलवाया, जिनके वाक्यों से

प्रेरित हो राजा रुक्मांगद एकादशी को भोजन कर लें। ब्राह्मणों को आया देख मोहिनी ने प्रणाम कर उनसे कहा : ''द्विजवरो ! राजा के लिए प्रजा की रक्षा, स्त्रियों के लिए पतिसेवा, पुत्रों के लिए माता-पिता की सेवा करना धर्म है। इन राजा का शरीर क्षीण हो गया है, फिर ये एकादशी के दिन संयम-नियम का पालन कैसे करेंगे ? अन्न से ही प्राणों की पुष्टि तथा प्राण से ही शरीर में चेष्टा की शक्ति आती है और चेष्टा से ही शत्रु का नाश होता है।''

यह सुन ब्राह्मण बोले : ''राजन् ! मोहिनी की बात सही है , जो सदा अस्त्र-शस्त्र उठा दुष्ट पुरुषों को संयमित करते हैं, उनके लिए उपवास कर्म कैसे उचित हो सकता है ? आपने जो इस व्रत की प्रतिज्ञा की है वह ठीक है, किंतु ब्राह्मणों के साथ भोजन करने से आपका व्रत भंग नहीं होगा।''

यह सुन राजा मन में क्रोधित हुए। पर ब्राह्मणों से मधुर वाणी में बोले : ''ब्राह्मणो ! इंद्र का तेज क्षीण हो जाय, हिमालय बदल जाय, समुद्र सूख जाय तथा अग्नि अपनी स्वाभाविक उष्णता को त्याग दे, फिर भी मैं एकादशी व्रत का त्याग नहीं करूँगा। विप्रगण ! एकादशी का दिन सब यज्ञों से प्रधान पापनाशक, धर्मवर्धक, मोक्षदायक तथा जन्मरूपी बंधन को काटनेवाला है। यह तेज की निधि है। जो अपनी प्रतिज्ञा तथा व्रत को भंग कर देता है, वह वमन करके फिर उसे चाटनेवाले के समान तथा यमपुरी का मेहमान होता है। अतः उस दिन अन्न-भोजन की बात मूढ़ पुरुष ही कह सकते हैं।''

राजा की बात सुनकर मोहिनी विलाप करते हुई बोली : ''राजन् ! आप प्रतिज्ञा का उल्लंघन करके यदि दिये हुए वचन का पालन न करेंगे तो मैं चली-जाऊँगी। तुम अपने ही वचन को मिटाकर धर्म का नाश करनेवाले हो, तुम्हें धिक्कार है।'' ऐसा कह मोहिनी राजा को छोड़ ब्राह्मणों को साथ ले वहाँसे चल दी। उसी समय राजपुत्र धर्मांगद सारी पृथ्वी का परिभ्रमण करके आये थे। उन्होंने मोहिनी का विलाप सुन बड़े वेग से उसके सामने जाकर प्रणाम करते हुए पूछा : ''माँ ! किसने आपका अपमान किया है ? आज आप रुष्ट कैसे हो गयीं ? इस समय इन ब्राह्मणों के साथ आप कहाँ जा रही हैं ?'' धर्मांगद की बात सुनकर मोहिनी बोली : ''बेटा ! तुम्हारे पिता झूठे हैं। अब मेरे मन में उनके साथ रहने का कोई उत्साह नहीं हैं।''

धर्मांगद मोहिनी को धैर्य बँधाते हुए पिताजी के पास ले गये और पिता से वचन निभाने की बात कहने लगे। तब रुक्मांगद ने कहा : ''बेटा ! मेरी कीर्ति नष्ट हो जाय, मैं असत्यवादी हो जाऊँ अथवा घोर नरक में पड़ूँ, परंतु एकादशी के दिन भोजन नही करूँगा। तात ! नरकों की जो पंक्तियाँ मैंने सूनी कर दी हैं, वे मेरे भोजन करने से ज्यों-की-त्यों भर जायेंगी। स्त्री-पुत्र आदि कुटुंबी-जनों के साथ मैं अपना शरीर त्याग कर सकता हूँ, परंतु भगवान मधुसूदन के पुण्यमय दिवस एकादशी को अन्न सेवन नहीं करूँगा।''

पिता की बात सुन धर्मांगद ने अपनी कल्याणमयी माता संध्यावली को बुलवाकर उन दोनों की बातों से अवगत कराया और मोहिनी को सांत्वना देने की बात कही। रानी संध्यावली की युक्तियुक्त बातों से प्रभावित हो मोहिनी बोली : ''यदि राजा एकादशी के दिन भोजन न करें तो उसके बदले एक दूसरा कार्य करें, अपने हाथ में तलवार लेकर धर्मांगद के मस्तक को काटकर तुरंत मेरी गोद में गिरा दें।''

यह सुन महारानी संध्यावली क्षणभर के लिए काँप उठीं। तदनंतर हँसते हुए बोली : ''पुराणों में एकादशी के संबंध में सुना जाता है - धन को त्याग दें; स्त्री, घर और जीवन को भी छोड़ दें तथा देश, राजा, मित्र और अत्यंत प्रिय व्यक्ति को भी त्याग दे, परंतु दोनों पक्षों की पवित्र एकादशी का त्याग न करे, क्योंकि पुत्र, भाई, सुहृद और प्रियजन इहलोक में काम आते हैं किंतु एकादशी इहलोक और परलोक दोनों में ही अभीष्ट साधन करती है। अतः मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए राजा के द्वारा धर्मांगद का मस्तक अवश्य दिलवाऊँगी।''

तदनंतर देवी संध्यावली ने पति के दोनों चरण पकड़ उन्हें पुत्रवध के लिए उद्यत किया। राजा यह सुन मोहिनी को तरह-तरह के वचनों से मनाने लगे

कि वह ये दोनों आग्रह छोड़ दे - एक तो एकादशी को भोजन कराने का और दूसरा पुत्रवध का। परंतु मोहिनी अपनी बात पर दृढ़ रही और बोली : ''राजन् ! या तो एकादशी को भोजन कर इच्छानुसार बहुत वर्षोंतक पृथ्वी का शासन करें, नहीं तो पुत्रवध। राजन् ! तुम्हें यदि पुत्र प्रिय है तो एकादशी के दिन भोजन करो।''

मोहिनी जब यह प्रस्ताव प्रस्तुत कर रही थी, तब राजकुमार धर्मांगद वहाँ आये और मोहिनी की ओर देखकर उसे प्रणाम कर विनीत भाव से राजा के आगे एक चमचमाती तलवार रख दी और अपने-आपको समर्पित कर पिता से बोले : ''पिताजी ! मुझे मार कर माता मोहिनी के समक्ष आपने जो प्रतिज्ञा की है उसे सत्य कर दिखाइये। राजेंद्र ! सत्य का पालन करिये और एकादशी को भोजन न कीजिये तथा मोहिनी को दाहिना हाथ देकर आपने जो वचन दिया था, उसके पालन न करने के भयंकर असत्य भाषण के पाप से अपने-आपको बचाइये।''

ठीक उसी समय भगवान विष्णु तीनों के धैर्य के अवलोकनार्थ अदृश्य रूप से आकाश में आ स्थित हुए। पुत्र के वचन सुन राजा रुक्मांगद पुत्रवध के लिए उद्यत हो उठे। राजा ने भगवान विष्णु को प्रणाम कर पुत्र धर्मांगद को मारने के लिए ज्यों ही तलवार उपर उठायी, त्यों ही मोहिनी का रंग फीका पड़ गया। वह तरह-तरह की बातें सोच अपने अनिष्ट की आशंका से मूर्च्छित हो गयी। राजा ज्यों ही पुत्र का मनोहर मुखयुक्त मस्तक काटना चाहते थे, त्यों ही भगवान श्रीहरि ने अपने हाथों से उन्हें पकड़ लिया और कहा : ''राजन् ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम मेरे वैकुंठ धाम में चलो। अकेले नहीं, अपनी प्रिय रानी संध्यावली और पुत्र धर्मांगद को भी साथ ले चलो।'' ऐसा कहकर भगवान ने राजा को स्पर्श कर दिया जिससे उनका (मोहिनी में आसक्ति रूप) रजोगुण धुल गया। वे महात्मा रुक्मांगद पत्नी और पुत्र के साथ वेगपूर्वक भगवान श्रीहरि के दिव्य स्वरूप में सशरीर समा गये।

एकादशी व्रत पालने में विघ्नरूप मोहिनी का क्या हुआ ? पढ़िये अगले अंक में... (क्रमशः)

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

माँ लक्ष्मी का निवास कहाँ ?

[दीपावली : ४ नवंबर २००२]

युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से पूछा :

''दादाजी ! मनुष्य किन उपायों से दुःखरहित होता है ? किन उपायों से जाना जाय कि यह मनुष्य दुःखी होनेवाला है और किन उपायों से जाना जाय कि यह मनुष्य सुखी होनेवाला है ? इसका भविष्य उज्ज्वल होनेवाला है, यह कैसे पता चलेगा और यह भविष्य में पतन की खाई में गिरेगा, यह कैसे पता चलेगा ?''

इस विषय में एक प्राचीन कथा सुनाते हुए भीष्मजी ने कहा :

एक बार इंद्र, वरुण आदि विचरण कर रहे थे। वे सूर्य की प्रथम किरण से पहले ही सरिता के तट पर पहुँचे तो देवर्षि नारद भी वहाँ विद्यमान थे। देवर्षि नारद ने सरिता में गोता मारा, स्नान किया और मौनपूर्वक जप करते-करते सूर्यनारायण को अर्घ्य दिया। देवराज इंद्र ने भी ऐसा ही किया।

इतने में सूर्यनारायण की कोमल किरणें उभरने लगीं और एक कमल पर देदीप्यमान प्रकाश छा गया। इंद्र और नारदजी ने उस प्रकाशपुंज की ओर गौर-से देखा तो माँ लक्ष्मीजी ! दोनों ने माँ लक्ष्मी का अभिवादन किया। फिर पूछा :

''माँ ! समुद्र-मंथन के बाद आपका प्राकट्य हुआ था।

**ॐ नमः भाग्यलक्ष्मी च विद्महे।
अष्टलक्ष्मी च धीमहि।
तन्नो लक्ष्मी प्रचोदयात्।**

ऐसा कहकर लोग आपको पूजते हैं। मातेश्वरी ! आप ही बताइये कि आप किस पर प्रसन्न होती हैं ? किसके घर में आप स्थिर रहती हैं और किसके घर से आप विदा हो जाती हैं ? आपकी संपदा किसको विमोहित करके संसार में भटकाती है और किसको असली संपदा भगवान नारायण से मिलाती है ?''

माँ लक्ष्मी : ''देवर्षि नारद और देवेंद्र ! तुम दोनों ने लोगों की भलाई के लिए, मानव-समाज के हित के लिए प्रश्न किया है। अतः सुनो।

पहले मैं दैत्यों के पास रहती थी क्योंकि वे पुरुषार्थी थे, सत्य बोलते थे, वचन के पक्के थे अर्थात् बोलकर मुकरते नहीं थे। कर्त्तव्यपालन में दृढ़ थे, एक बार जो निश्चय कर लेते थे, उसमें तत्परता से जुट जाते थे। अतिथि का सत्कार करते थे। निर्दोषों को सताते नहीं थे। सज्जनों का आदर करते थे और दुष्टों से लोहा लेते थे। जबसे उनके सद्गुण दुर्गुणों में बदलने लगे, तबसे मैं तुम्हारे पास देवलोक में आने लगी।

समझदार लोग उद्योग से मुझे पाते हैं, दान से मेरा विस्तार करते हैं, संयम से मुझे स्थिर बनाते हैं और सत्कर्म में मेरा उपयोग करके शाश्वत हरि को पाने का यत्न करते हैं।

जहाँ सूर्योदय से पहले स्नान करनेवाले, सत्य बोलनेवाले, वचन में दृढ़ रहनेवाले, पुरुषार्थी, कर्त्तव्यपालन में दृढ़ता रखनेवाले, अकारण किसीको दंड न देनेवाले रहते हैं; जहाँ उद्योग, साहस, धैर्य और बुद्धि का विकास होता है और भगवत्परायणता होती है, वहाँ मैं निवास करती हूँ।

देवर्षि ! जो भगवान के नाम का जप करते हैं, स्मरण करते हैं और श्रेष्ठ आचार करते हैं, वहाँ मेरी रुचि बढ़ती है। पूर्वकाल में चाहे कितना भी पापी रहा हो, अधम और पातकी रहा हो परंतु जो अभी संत और शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ करता है, मैं उसके जीवन में भाग्यलक्ष्मी, सुखदलक्ष्मी, करुणालक्ष्मी और औदार्यलक्ष्मी के रूप में आ विराजती हूँ।

जो सुबह झाड़ू-बुहारी करके घर को साफ-सुथरा रखते हैं, इंद्रियों को संयम में रखते हैं, भगवान के प्रति श्रद्धा रखते हैं, किसीकी निंदा न तो करते हैं न ही सुनते हैं, जरा-जरा बात में क्रोध नहीं करते हैं, जिनका दयालु स्वभाव है और जो विचारवान हैं, उनके वहाँ मैं स्थिर होकर रहती हूँ।

जो मुझे स्थिर रखना चाहते हैं, उन्हें रात्रि को घर में झाड़ू-बुहारी नहीं करनी चाहिए।

जो सरल हैं, सुदृढ़ भक्तिवाले हैं, परोपकार को नहीं भूलते हैं, मृदुभाषी हैं, विचार सहित विनम्रता का सद्गुण जहाँ है, वहाँ मैं निवास करती हूँ।

जो विश्वासपात्र जीवन जीते हैं, पर्वों के दिन घी और मांगलिक वस्तुओं का दर्शन करते हैं, धर्मचर्चा करते-सुनते हैं, अति संग्रह नहीं करते और अति दरिद्रता में विश्वास नहीं करते, जो हजार-हजार हाथ से लेते हैं और लाख-लाख हाथ से देने को तत्पर रहते हैं, उन पर मैं प्रसन्न रहती हूँ।

जो दिन में अकारण नहीं सोते, विषादग्रस्त नहीं होते, भयभीत नहीं होते, रोग से ग्रस्त व्यक्तियों को सांत्वना देते हैं, पीड़ित व्यक्तियों को, थके-हारे व्यक्तियों को ढाढ़स बँधाते हैं, ऐसों पर मैं प्रसन्न रहती हूँ।

जो दुर्जनों के संग से अपने को बचाते हैं, उनसे न तो द्वेष करते हैं न प्रीति और सज्जनों का संग आदरपूर्वक करते हैं और बार-बार निस्संग नारायण में ध्यानस्थ हो जाते हैं, उनके वहाँ मैं बिना बुलाये वास करती हूँ।

जिनके पास विवेक है, जो उत्साह से भरे हैं, जो अहंकार से रहित हैं और आलस्य-प्रमाद जहाँ फटकता तक नहीं, वहाँ मैं प्रयत्नपूर्वक रहती हूँ।

जो अप्रसन्नता के स्वभाव को दूर फेंकते हैं, दोषदृष्टि के स्वभाव से किनारा कर लेते हैं, अविवेक से किनारा कर लेते हैं, असंतोष से अपने को उबार लेते हैं, जो तुच्छ कामनाओं में नहीं गिरते, देवेंद्र ! उन पर मैं प्रसन्न रहती हूँ।

जिसका मन जरा-जरा बात में खिन्न होता है, जो जरा-जरा बात में अपने वचनों से मुकर जाता है, दीर्घसूत्री होता है, आलसी होता है, दगाबाज और पराश्रित होता है, राग-द्वेष में पचता रहता है, ईश्वर-गुरु-शास्त्र से विमुख होता है, उससे मैं मुख मोड़ लेती हूँ।''

तुलसीदासजी ने भी कहा है :

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

जहाँ सत्त्वगुण होता है, सुमति होती है, वहाँ

संपत्ति आती है और जहाँ कुमति होती है, वहाँ दुःख होता है । जीवन में अगर सत्त्व है तो लक्ष्मीप्राप्ति का मंत्र चाहे जपो, चाहे न भी जपो...

क्रियासिद्धि वसति सत्त्वे महत्तां नोपकरणे ।

सफलता साधनों में नहीं होती वरन् सत्त्व में निवास करती है। जिस व्यक्ति में सात्त्विकता होती है, दृढ़ता होती है, पौरुष होता है, पराक्रम आदि सद्‌गुण होते हैं, वही सफलता पाता है।

जो सुमति का आदर करता हुआ जीवन जीता है, उसका भविष्य उज्ज्वल है और जो कुमति का आश्रय लेकर सुखी होने की कोशिश करेगा तो वह यहाँ नहीं अमेरिका भी चला जाय, थोड़े-बहुत डॉलर भी कमा ले तो भी दुःखी ही रहेगा।

जो छल-कपट और स्वार्थ का आश्रय लेकर, दूसरों के शोषण का आश्रय लेकर सुखी होना चाहता है, उसके पास वित्त आ सकता है, धन आ सकता है परंतु लक्ष्मी नहीं आ सकती, महालक्ष्मी नहीं आ सकती। वित्त से बाह्य सुख के साधनों की व्यवस्था हो सकती है, धन से नश्वर भोग के पदार्थ मिल सकते हैं, लक्ष्मी से स्वर्गीय सुख मिल सकता है और महालक्ष्मी से महान परमात्म-प्रसाद की, परमात्म-शांति की प्राप्ति हो सकती है।

हम दीवाली मनाते हैं, एक-दूसरे के प्रति शुभकामना करते हैं, एक-दूसरे के लिए शुभचिंतन करते हैं - यह तो ठीक है, परंतु साथ-ही-साथ सार वस्तु का भी ध्यान रखना चाहिए कि 'एक दीवाली बीती अर्थात् आयुष्य का एक वर्ष कम हो गया।'

दीवाली का दिन बीता अर्थात् आयु का एक दिन और बीत गया... आज वर्ष का प्रथम दिन है, यह भी बीत जायेगा... इसी प्रकार आयुष्य बीता जा रहा है... चाहे फिर संपत्ति भोगकर आयुष्य नष्ट करो, चाहे कम संपत्ति में आयु नष्ट करो, चाहे गरीबी में करो... किसी भी कीमत पर आयु को बढ़ाया नहीं जा सकता।

सात्त्विक बुद्धिवाला मनुष्य जानता है कि सब कुछ देकर भी आयु बढ़ायी नहीं जा सकती। मान लो, किसीकी उम्र ५० वर्ष है। ५० वर्ष खर्च करके जो कुछ मिला है वह सब वापस दे दे तो भी ५० दिन भी आयु बढ़नेवाली नहीं है। इतना कीमती समय है। समय अमृत है, समय मधु है, समय आत्मा की मधुरता पाने के लिए, भगवद् रस पाने के लिए है। जो समय को इधर-उधर बरबाद कर देता है समझो, उसका भविष्य दुःखदायी है।

जो समय का तामसी उपयोग करता है, उसका भविष्य पाशवी योनियों में, अंधकार में जायेगा। जो समय का राजसी उपयोग करता है, उसका भविष्य सुख-सुविधाओं में बीतेगा। जो समय का सात्त्विक उपयोग करता है, उसका भविष्य सात्त्विक सुखवाला होगा। परंतु जो समय का उपयोग परब्रह्म परमात्मा के लिए करता है, वह उसे पाने में भी सफल हो जायेगा।

जो लोग जूठे मुँह रहते हैं, मैले-कुचैले कपड़े पहनते हैं, दाँत मैले-कुचैले रखते हैं, दीन-दुःखियों को सताते हैं, माता-पिता की दुआ नहीं लेते, शास्त्र और संतों को नहीं मानते - ऐसे हीन स्वभाववाले लोगों का भविष्य दुःखदायी है।

कलियुग में लोग दूध खुला रख देते हैं, घी को जूठे हाथ से छूते हैं, जूठा हाथ सिर को लगाते हैं, जूठे मुँह शुभ वस्तुओं का स्पर्श कर लेते हैं, उनके घर का धन-धान्य और लक्ष्मी कम हो जाती है।

जो जप-ध्यान-प्राणायाम आदि करते हैं, आय का कुछ हिस्सा दान करते हैं, शास्त्र के ऊँचे लक्ष्य को समझने के लिए महापुरुषों का सत्संग आदर सहित सुनते हैं और सत्संग की कोई बात जँच जाय तो पकड़कर उसके अनुसार अपने को ढालने में लगते हैं, समझो, उनका भविष्य मोक्षदायक है। उनके भाग्य में मुक्ति लिखी है, उनके भाग्य में परमात्मा लिखे हैं, उनके भाग्य में परम सुख लिखा है।

कोई किसीको सुख-दुःख नहीं देता। मानव अपने भाग्य का आप विधाता है। तुलसीदासजी महाराज ने भी कहा है :

को काहू को नहिं सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोगतहिं भ्राता॥

यह समझ आ जाय तो आप दुःखों से बच जाओगे। आपकी समझ बढ़ जाय, आप अपने हलके स्वभाव पर विजय पा लो तो लक्ष्मी को बुलाना नहीं पड़ेगा वरन् लक्ष्मी आपके घर में स्वयं निवास करेगी। जहाँ नारायण निवास करते हों, वहाँ लक्ष्मी को अलग से बुलाना पड़ता है क्या ?

जहाँ व्यक्ति जाता है, वहाँ अपनी छाया को बुलाता है क्या ? छाया तो उसके साथ ही रहती है। ऐसे ही जहाँ नारायण के लिए प्रीति है, नारायण के निमित्त आपका पवित्र स्वभाव बन गया है वहाँ संपत्ति, लक्ष्मी अपने-आप आती है।

भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं : ''युधिष्ठिर ! किस व्यक्ति का भविष्य उज्ज्वल है, किसका अंधकारमय है ? इस विषय में तुमने जो प्रश्न किया उसके संदर्भ में मैंने तुम्हें माँ लक्ष्मी के साथ देवेंद्र और देवर्षि नारद का संवाद सुनाया। इस संवाद को जो भी सुनेगा, सुनायेगा उस पर लक्ष्मीजी प्रसन्न रहेंगी और उसे नारायण की भक्ति प्राप्त होगी।

वर्ष के प्रथम दिन जो इस प्रकार की गाथा गायेगा, सुनेगा, सुनायेगा उसके जीवन में संतोष, शांति, विवेक, भगवद्भक्ति, प्रसन्नता और प्रभुस्नेह प्रकट होगा। इस संवाद को सुनने-सुनाने से जीवों का सहज में ही मंगल होगा।''

*

दीपज्योति की महिमा

शास्त्रों में दीपज्योति की महिमा आती है। दीपज्योति पापनाशक, शत्रुओं की वृद्धि को रोकनेवाली, आयु, आरोग्य देनेवाली है। पूजा में, साधन-भजन में कहीं कमी रह गयी हो तो अंत में आरती करने से वह कमी पूरी हो जाती है।

दीपो ज्योतिः परं ब्रह्म दीपो ज्योतिर्जनार्दनः।
दीपो हरतु मे पापं सांध्यदीप नमोऽस्तु ते ॥
शुभं करोतु कल्याणं आरोग्यं सुखसम्पदम्।
शत्रुबुद्धिविनाशं च दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते ॥

यदि घर में दीपक की लौ पूर्व दिशा की ओर है तो आयु की वृद्धि करती है, पश्चिम की ओर है तो दुःख की वृद्धि करती है, उत्तर की ओर है तो स्वास्थ्य और प्रसन्नता बढ़ाती है और दक्षिण की ओर है तो हानि करती है।

घर में आप दीया जलायें तो वह आपके उत्तर अथवा पूर्व में होना चाहिए। पर भगवत्प्राप्त महापुरुषों के आगे किसी भी दिशा में दिया करते हैं तो सफल-ही-सफल है। दीपज्योति से पाप-ताप का हरण होता है, शत्रुबुद्धि का शमन होता है और पुण्यमय, सुखमय जीवन की वृद्धि होती है।

यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर।
हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति वै ॥

'आज वर्ष के प्रथम दिन जो व्यक्ति हर्ष में रहता है, उसका सारा वर्ष हर्ष में बीतता है और जो चिंता और शोक में रहता है, उसका सारा वर्ष ऐसा ही जाता है।'

जैसी सुबह बीतती है, ऐसा ही दिन बीतता है। वर्ष की सुबह माने नूतन वर्ष का प्रथम दिन। यह जैसा बीतता है ऐसा ही सारा वर्ष बीतता है।

आज का दिन वर्ष रूपी डायरी का प्रथम पन्ना है। गत वर्ष की डायरी का सिंहावलोकन करके जान लो कि कितना लाभ हुआ और कितनी हानि। आगामी वर्ष के लिए थोड़े निर्णय कर लो कि अब ऐसे-ऐसे जीऊँगा। आप जैसे बनना चाहते हैं ऐसे भविष्य में बनेंगे, ऐसा नहीं। आज से ही ऐसा बनने की शुरूआत कर दो। 'मैं अभी से ही ऐसा हूँ' यह चिंतन करो। ऐसे न होने में जो बाधाएँ हों उन्हें हटाते जाओ तो आप परमात्मा का साक्षात्कार भी कर सकते हो। कुछ भी असंभव नहीं है।

आज पक्का संकल्प कर लो कि सुख-दुःख, लाभ-हानि और मान-अपमान में सम रहेंगे। संसार की उपलब्धि-अनुपलब्धियों में खिलौनाबुद्धि करके अपनी आत्मा में आयेंगे। ज्ञान से युक्त होकर सेवा करेंगे, मूर्खता से नहीं। ज्ञान-विज्ञान से तृप्त बनेंगे। जो भी कार्य करेंगे, वह तत्परता से और सतर्कता से करेंगे।

वास्तु-प्रसाद

किसी व्यक्ति को प्रयत्न करने पर भी निवास के लिए भूमि अथवा मकान न मिल रहा हो तो उसे भगवान वराह की उपासना करनी चाहिए। भगवान वराह की उपासना करने से, उनकी स्तुति-प्रार्थना करने से अवश्य ही निवास के योग्य भूमि या मकान मिल जाता है। 'स्कंद पुराण' के वैष्णव खंड में आया है कि भूमि प्राप्त करने के इच्छुक मनुष्य को सदा ही इस मंत्र का जप करना चाहिए -

ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धारणाय स्वाहा।

* पूर्व अथवा उत्तर में ऊँची भूमि पुत्र और धन का नाश करनेवाली है।

* आग्नेय, नैर्ऋत्य अथवा वायव्य में ऊँची भूमि धनदायक है।

* पश्चिम में ऊँची भूमि पुत्रप्रद तथा धन-धान्य की वृद्धि करनेवाली है।

* दक्षिण में ऊँची भूमि सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाली तथा नीरोग बनानेवाली है।

* ईशान में ऊँची भूमि महाक्लेशकारक है।

नारद पुराण (पूर्व० ५६.५४२) में आया है कि पूर्व, उत्तर और ईशान दिशा में नीची भूमि सब मनुष्यों के लिए अत्यंत वृद्धिकारक होती है। अन्य दिशाओं में नीची भूमि सबके लिए हानिकारक होती है।

* पूर्व में नीची भूमि पुत्रदायक तथा धन की वृद्धि करनेवाली है।

* आग्नेय में नीची भूमि मृत्यु तथा शोक देनेवाली, धन का नाश और अग्निभय करनेवाली है।

* दक्षिण में नीची भूमि मृत्युदायक, रोगदायक, पुत्र-पौत्रविनाशक, क्षयकारक और अनेक दोष करनेवाली है।

* नैर्ऋत्य में नीची भूमि महान भयदायक, रोगदायक, धन की हानि और चोरभय करनेवाली है।

* पश्चिम में नीची भूमि धन-धान्य व कीर्तिनाशक, शोकदायक, पुत्रक्षय तथा कलहकारक है।

* वायव्य में नीची भूमि परदेशवास करानेवाली, उद्वेगकारक, मृत्युदायक, कलहकारक, रोगदायक तथा धान्यनाशक है।

* उत्तर में नीची भूमि धन-धान्यप्रद और वंशवृद्धि करनेवाली अर्थात् पुत्रदायक है।

* ईशान में नीची भूमि विद्या देनेवाली, धनदायक, रत्नसंचय करनेवाली और सुखदायक है।

* मध्य में नीची भूमि रोगप्रद तथा सर्वनाश करनेवाली है।

जप-ध्यान के लिए बैठते समय दिशा का ध्यान रखा जाना आवश्यक है। इसका सीधा प्रभाव साधक की चेतना पर पड़ता है। अलग-अलग दिशाओं के प्रभाव निम्नानुसार हैं :
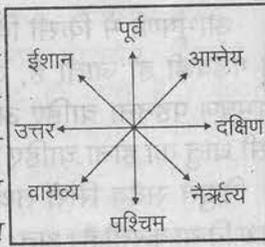
उत्तर : त्यागी प्रवृत्ति, तपस्या, सन्यासभाव

दक्षिण : जिद्दीपन, उद्दण्डता, कठोर भाव भंगिमा

पूर्व : मानसिक उन्नति, गृहशांति

पश्चिम : धनलाभ

ईशान : सर्वमंगल, शांति

आग्नेय : उच्चाटन, क्रोध, मानसिक अशांति

नैर्ऋत्य : अनुचित प्रवृत्ति, बेशर्मी

वायव्य : प्रयास के अनुरूप फलप्राप्ति न हो।

घर में पूजा-आराधना के लिए कक्ष ईशान में बनाना चाहिए। 'विश्वकर्मा प्रकाश' में कहा गया है : 'ईशान्यां देवता गेहम्।'

(वास्तुशास्त्र के अनुसार)

विविध रोगों में आभूषण-चिकित्सा

भारतीय समाज में स्त्री-पुरुषों में आभूषण पहनने की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। आभूषण धारण करने का अपना एक महत्त्व है, जो शरीर और मन दोनों से जुड़ा हुआ है। स्वर्ण के आभूषणों की प्रकृति गर्म है तथा चाँदी के गहनों की प्रकृति शीतल है।

आभूषणों में किसी विपरीत धातु के टाँके से भी गड़बड़ी हो जाती है, अतः सदैव टाँकारहित आभूषण पहनना चाहिए अथवा यदि टाँका हो तो उसी धातु का होना चाहिए जिससे गहना बना हो।

विद्युत सदैव सिरों तथा किनारों की ओर से प्रवेश किया करती है। अतः मस्तिष्क के दोनों भागों को विद्युत के प्रभावों से प्रभावशाली बनाना हो तो नाक और कान में छिद्र करके सोना पहनना चाहिए। कानों में सोने की बालियाँ अथवा झुमके आदि पहनने से स्त्रियों में मासिकधर्म-संबंधी अनियमितता कम होती है, हिस्टीरिया में लाभ होता है तथा आँत उतरने अर्थात् हर्निया का रोग नहीं होता। नाक में नथुनी धारण करने से नासिका-संबंधी रोग नहीं होते तथा सर्दी-खाँसी में राहत मिलती है। पैरों की उँगलियों में चाँदी की बिछिया पहनने से स्त्रियों को प्रसवपीड़ा कम होती है, साइटिका रोग तथा दिमागी विकार दूर होकर स्मरणशक्ति में वृद्धि होती है। पायल पहनने से पीठ, एड़ी तथा घुटनों के दर्द में राहत मिलती है, हिस्टीरिया के दौरे नहीं पड़ते तथा श्वासरोग की संभावना दूर हो जाती है। इसके साथ ही रक्तशुद्धि होती है तथा मूत्ररोग की शिकायत नहीं रहती।

मानवीय जीवन को स्वस्थ व आनंदमय बनाने के लिए वैदिक रस्मों में सोलह शृंगार अनिवार्य करार दिये गये हैं, जिनमें कर्णछेदन तो अति महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन काल में प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह लड़का हो या लड़की, उसकी तीन से पाँच वर्ष की आयु में दोनों कानों का छेदन करके जस्ता या सोने की बालियाँ पहना ही दी जाती थीं। इस विधि का उद्देश्य अनेक रोगों की जड़ें बाल्यकाल ही में उखाड़ देना था। अनेक अनुभवी पुरुषों का कहना है कि इस क्रिया से आँत उतरना, अंडकोष बढ़ना तथा पसलियों के रोग नहीं होते। छोटे बच्चों की पसली बार-बार उतरने से रोकने के लिए नवजात शिशु जब छः दिन का होता है, तब परिजन उसे हँसली और कड़ा पहनाते हैं। कड़ा पहनने से शिशु के सिकुड़े हुए हाथ-पैर भी गुरुत्वाकर्षण के कारण सीधे हो जाते हैं। बच्चों को खड़े रहने की क्रिया में भी कड़ा बलप्रदायक होता है।

यह मान्यता भी है कि मस्तक पर बिंदिया अथवा तिलक लगाने से चित्त की एकाग्रता विकसित होती है तथा मस्तिष्क में पैदा होनेवाले विचार असमंजस की स्थिति से मुक्त होते हैं। आजकल बिंदिया में सम्मिलित लाल तत्त्व पारे का लाल ऑक्साइड होता है जो कि शरीर के लिए लाभप्रदायक सिद्ध होता है। बिंदिया और शुद्ध चंदन के प्रयोग से मुखमंडल झुर्रीरहित बनता है। माँग में टीका पहनने से मस्तिष्क-संबंधी क्रियाएँ नियंत्रित, संतुलित व नियमित रहती हैं और मस्तिष्क के विकार नष्ट होते हैं, परंतु वर्त्तमान में जो केमिकल की बिंदिया चल पड़ी है वह लाभ के बजाय हानि करती है।

हाथ की सबसे छोटी उँगली में अँगूठी पहनने से छाती के दर्द व घबराहट से रक्षा होती है तथा ज्वर, कफ, दमा आदि के प्रकोपों से बचाव होता है। स्वर्ण के आभूषण पवित्र, सौभाग्यवर्धक तथा संतोषप्रदायक हैं। रत्नजड़ित आभूषण धारण करने से ग्रहों की पीड़ा, दुष्टों की नजर और बुरे स्वप्नों का नाश होता है। शुक्राचार्यजी के अनुसार पुत्र की कामनावाली स्त्रियों को हीरा नहीं पहनना चाहिए।

पानी-प्रयोग से अद्भुत लाभ

श्री वेदव्यासस्वरूप सद्गुरुदेव के श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम स्वीकार हो।

मुझे आपके दर्शन से पूर्व आपकी पत्रिका 'ऋषि प्रसाद' के अध्ययन के अवसर प्राप्त हुए हैं। मैं शरीर से इतनी अस्वस्थ थी कि स्वप्न में भी नहीं सोच सकती थी कि इसी जीवन में आपके सान्निध्य का अवसर प्राप्त कर सकूँगी। मेरी टाँगें पानी की कमी के कारण जुड़ गयी थीं तथा बाजुओं व जोड़ों में भी दर्द रहा करता था। अंग्रेजी दवाइयों के इस्तेमाल के कारण मेरी आँखों में खराबी हो रही थी। संयोगवश प्रातःस्मरणीय पूजनीय बापूजी के एक शिष्य द्वारा मुझे पानी-प्रयोगवाला इश्तिहार प्राप्त हुआ। तब मैंने पानी पीना आरंभ किया। पानी पीने की मात्रा एक गिलास से शुरू करके धीरे-धीरे चार गिलास तक बढ़ायी तो टाँगों में हरकत शुरू हो गयी और जोड़ों का दर्द भी गायब हो गया। अब मैं किसी पर निर्भर नहीं हूँ। रोटी बनाना, कपड़े धोना, बाजार से सामान लाना इत्यादि सारे कार्य मैं गुरुदेव की कृपा से स्वयं ही कर रही हूँ। गुरुदेव ने मुझे नया जीवन दे दिया है।

- सुदर्शन कुमारी, नई दिल्ली।

पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम

रतलाम (म.प्र.) : १२ से १५ अक्टूबर, 'विद्यार्थी सर्वांगीण उत्थान शिविर' तथा १७ से २१ अक्टूबर, 'ध्यान योग साधना शिविर'। मांगल्य मंदिर, इण्डस्ट्रियल एरिया। फोन : (०७४१२) ६०७२२, ६०५४०, ६०२०८.

पूर्णिमा दर्शन : २१ अक्टूबर, रतलाम में।

संत च्यवनप्राश

च्यवनप्राश विशिष्ट आयुर्वेदिक उत्तम औषध तथा पौष्टिक खाद्य है, जिसका प्रमुख घटक आँवला है। जठराग्निवर्धक और बलवर्धक च्यवनप्राश का सेवन अवश्य करना चाहिए।

आँवले को उबाला जाता है तथा ५६ प्रकार की वस्तुओं के अतिरिक्त हिमालय से लायी गयी वज्रबला (सप्तधातुवर्द्धनी वनस्पति) भी डालकर यह च्यवनप्राश बनाया जाता है। आश्रम में उन औषधियों व जड़ीबूटियों की साफ-सफाई बड़ी तेजी से चल रही है। शरदपूर्णिमा के बाद ही आँवले वीर्यवान होते हैं। शरदपूर्णिमा को लगाये गये पेड़-पौधे पूर्व की अपेक्षा अधिक फलते-फूलते हैं।

लाभ : बालक, वृद्ध, क्षत-क्षीण, स्त्री-संभोग से क्षीण, शोषरोगी, हृदय के रोगी और क्षीण स्वरवाले को इसके सेवन से काफी लाभ होता है। इसके सेवन से खाँसी, श्वास, प्यास, वातरक्त, छाती का जकड़ना, वातरोग, पित्तरोग, शुक्रदोष और मूत्ररोग आदि नष्ट हो जाते हैं। यह स्मरणशक्ति और बुद्धिवर्धक तथा कान्ति, वर्ण और प्रसन्नता देनेवाला है तथा इसके सेवन से बुढ़ापा देरी से आता है। यह फेफड़ों को मजबूत करता है, दिल को ताकत देता है, पुरानी खाँसी और दमा में बहुत फायदा करता है तथा दस्त साफ लाता है। अम्लपित्त में यह बड़ा फायदेमंद है। वीर्यविकार और स्वप्नदोष नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त यह क्षय (टी. बी.) और हृदयरोगनाशक तथा भूख बढ़ानेवाला है। संक्षिप्त में कहा जाय तो पूरे शरीर की कार्यविधि को सुधार देनेवाला है।

मात्रा : दूध या नाश्ते के साथ १५ से २० ग्राम सुबह-शाम। बच्चों के लिये ५ से १० ग्राम।

नोट : केसरयुक्त स्पेशल च्यवनप्राश भी उपलब्ध है।

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

* संस्था समाचार *

सूरत (गुज.) : ३१ अगस्त व १ सितंबर को सूरत आश्रम में जन्माष्टमी महोत्सव धूमधाम से संपन्न हुआ । साक्षात् परब्रह्म, परम सुहृद, कभी द्विभुजी, कभी चतुर्भुजी, लीला पुरुषोत्तम, माखनचोर भगवान की याद में सद्गुरुदेव ने मक्खन-मिश्री लुटायी। भव्य मटकी-फोड़ कार्यक्रम हुआ। ऋतु-अनुकूल प्रसाद (पंजीरी) का भी वितरण किया गया।

दंतौड़ (गुज.) : १२ सितंबर को पूर्वाह्न में नवनिर्मित दंतौड़ (गुज.) आश्रम में पूज्यश्री का प्रथम पदार्पण हुआ। नवीन आश्रम का उद्घाटन, सत्संग-प्रवचन व भंडारा संपन्न हुआ। गरीबों को आश्रम की ओर से अन्न, वस्त्र, बर्तन व आर्थिक सहायता भी प्रदान की गयी।

भिलोड़ा (गुज.) : १२ सितंबर को ही अपराह्न में भिलोड़ा (गुज.) में सत्संग-प्रवचन का कार्यक्रम संपन्न हुआ। केवल एक दिन पूर्व घोषित इस कार्यक्रम में स्थानीय ग्रामवासियों की भीड़ उमड़ पड़ी। उनकी श्रद्धा-भक्ति देखते ही बनती थी। आयोजक समिति ने कल्पना भी नहीं की थी कि इतने अल्प समय में घोषित कार्यक्रम में इतनी बड़ी संख्या में लोग शामिल होंगे, लेकिन बापूजी के नाम से ही सफल हो जाते हैं समिति के दैवी कार्य। पूज्यश्री जहाँ भी जाते हैं, वहाँ जनसैलाब उमड़ पड़ता है। कारण स्पष्ट है कि आत्मारामी सद्गुरुदेव की आत्मस्पर्शी वाणी से, उनके दर्शन से शांति, साहस, आनंद, माधुर्य, मस्ती, सद्गुण, सदाचार आदि का शाश्वत धन मिलने लगता है। आत्मधन से संपन्न संतों के संग से मिलता है - एक ऐसा आनंद-माधुर्य जो रुपयों से नहीं खरीदा जा सकता, एक ऐसी सांत्वना जो अन्यत्र मिलनी दुर्लभ है, एक ऐसा मार्गदर्शन जो जीवन सँवार देता है।

प्रांतिज (गुज.) : १४ से १६ सितंबर तक प्रांतिज में तीन दिवसीय गीता-भागवत सत्संग भाव-भक्तिमय वातावरण में संपन्न हुआ, जिसने भक्तों के जीवन में आनंद और उल्लास का संचार कर दिया। अंतिम दिन भंडारे का भी आयोजन किया गया, जिसमें हजारों भक्तजन पूर्ण उत्साह से शामिल हुए।

मेहसाणा व कलोल (गुज.) : १७ सितंबर को मेहसाणा आश्रम में पूज्यपाद सद्गुरुदेव का प्रथम पदार्पण हुआ। नवनिर्मित आश्रम का उद्घाटन पूज्यश्री के करकमलों से हुआ। साथ ही सत्संग-प्रवचन व भंडारे का कार्यक्रम संपन्न हुआ। कलोल (गुज.) के नवनिर्मित आश्रम में भी पूज्यश्री इसी दिन शाम को पहुँचे। 'श्री गुरुमंदिर' का उद्घाटन व सत्संग-प्रवचन पूर्ण कर सद्गुरुदेव अमदावाद पहुँचे, जहाँ १९ सितंबर को पूर्णिमा दर्शन व सत्संग-प्रवचन का कार्यक्रम हर्षोल्लास से संपन्न हुआ। महाराष्ट्र, गुजरात व आस-पास के हजारों पूनम-व्रतधारी शिष्यों ने इस दिन पूज्यश्री के दर्शन, सत्संग व प्रसाद का लाभ लिया।

गाजियाबाद (उ.प्र.) : २० सितंबर को पूज्यपाद बापूजी गाजियाबाद पहुँचे, जहाँ तीन दिवसीय सत्संग व पूनम-दर्शन कार्यक्रम संपन्न हुआ। देशभर से आये पूनम-व्रतधारी साधकों से गाजियाबाद का कमला नेहरू नगर 'अध्यात्म नगर' में परिणत हुआ। स्थानीय लोगों व अखबारों के अनुसार यहाँ पहली बार किसी सत्संग-सभा में इतनी अधिक भीड़ देखी गयी। स्थानीय निवासियों के लिए यह एक आश्चर्य की बात थी, लेकिन पूज्यपाद बापूजी के साधकों के लिए यह आम बात है।

प्रथम दिवस का प्रथम सत्र विशेष रूप से विद्यार्थियों के लिए था। हजारों छात्र-छात्राओं ने पूज्यश्री की अनुभव-संपन्न वाणी को मंत्रमुग्ध होकर सुना । सभी को पूज्य बापूजी आध्यात्मिक पिता, सुहृद, बंधु, सखा महसूस हुए। विद्यार्थियों, उनके माता-पिता व अभिभावकों की निर्दोष निगाहें और पूज्य बापूजी का प्रेम तथा सत्संग-प्रसंग देखते-सुनते ही बनता था। सत्संग का ऐसा सुंदर माहौल देखने का अवसर पानेवाले भी धनभागी हैं। हजारों नर-नारी इस पावन आनंददायी अवसर के दृष्टा और भोक्ता रहे।

विद्यार्थियों ने दोनों हाथ उठाकर पूज्यश्री द्वारा बताये गये जीवन को उज्ज्वल व उन्नत बनानेवाले आदर्शों को पालने का वचन दिया। पूज्यपाद बापूजी ने उन्हें आत्मशक्ति बढ़ाने, व्यसनों से छुटकारा पाने तथा प्रतिभावान बनने की युक्तियों से अवगत कराया। प्रवचन के अंतिम दिन ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापूजी ने साधकों को वह युक्ति बतायी, जिससे वे अपने प्रत्येक कर्म को कर्मयोग में परिणत कर सकें। **पूज्यश्री ने अपने अनुभव-संपन्न वाणी में मानवमात्र के कर्म के पाँच दोष व उनके निवारण के लिए चार विद्याओं का विस्तृत विवेचन किया। २२ सितंबर की यह ऑडियो/विडियो कैसेट या विडियो सी.डी. साधकों के लिए अवश्य सुनने-देखने योग्य है।**

हापुड़ (उ.प्र.) : २२ सितंबर की शाम गाजियाबाद सत्संग की पूर्णाहुति करके पूज्यश्री हापुड़ पहुँचे, जहाँ हजारों साधक पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग के लिए पलकें बिछाये बैठे थे। भक्तजन रात्रि ९-०० बजे तक सत्संग-वर्षा से सराबोर होते रहे। यहाँ के भक्तों को अपनी अनुभव-संपन्न वाणी से अवगाहन कराते हुए पूज्यपाद बापूजी ने मिलिट्री की बाबूगढ़ छावनी (E.B.S. बाबूगढ़) के अतिथिगृह में रात्रि-निवास किया। संतश्री को अपने करीब पाकर छावनी के जवान व अधिकारी बड़े प्रसन्न हुए। २४०० एकड़ भूमि में फैली इस छावनी के ब्रिगेडियर, कर्नल और जवानों ने दर्शन व संत सान्निध्य का लाभ लिया।

पंचकुला (हरियाणा) : दिनांक २६ से २९ सितंबर तक ४ दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम संपन्न हुआ। यहाँ पूज्यश्री के प्रथम आगमन के बावजूद भी दर्शन-सत्संग के लिए श्रद्धालुओं की अपार भीड़ उमड़ पड़ी। २७ सितंबर को प्रातःकालीन सत्र विद्यार्थियों के लिए था। पूज्यश्री ने विद्यार्थियों को तेजस्वी-ओजस्वी बनने की अनेक युक्तियाँ बतायी और अपनी धीर-गंभीर वाणी में कहा : **''यह सत्संग जरूर रंग लायेगा। भारत अभी भी आध्यात्मिकता में अग्रणी है। देर-सवेर विश्वगुरु होकर रहेगा।''** दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा के विभिन्न भागों से आये श्रद्धालुओं को ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापूजी ने दुःख, मुसीबत, प्रतिकूलता और कष्ट के समय अंतरात्मा में आने की कला व प्रयोग सिखाये।
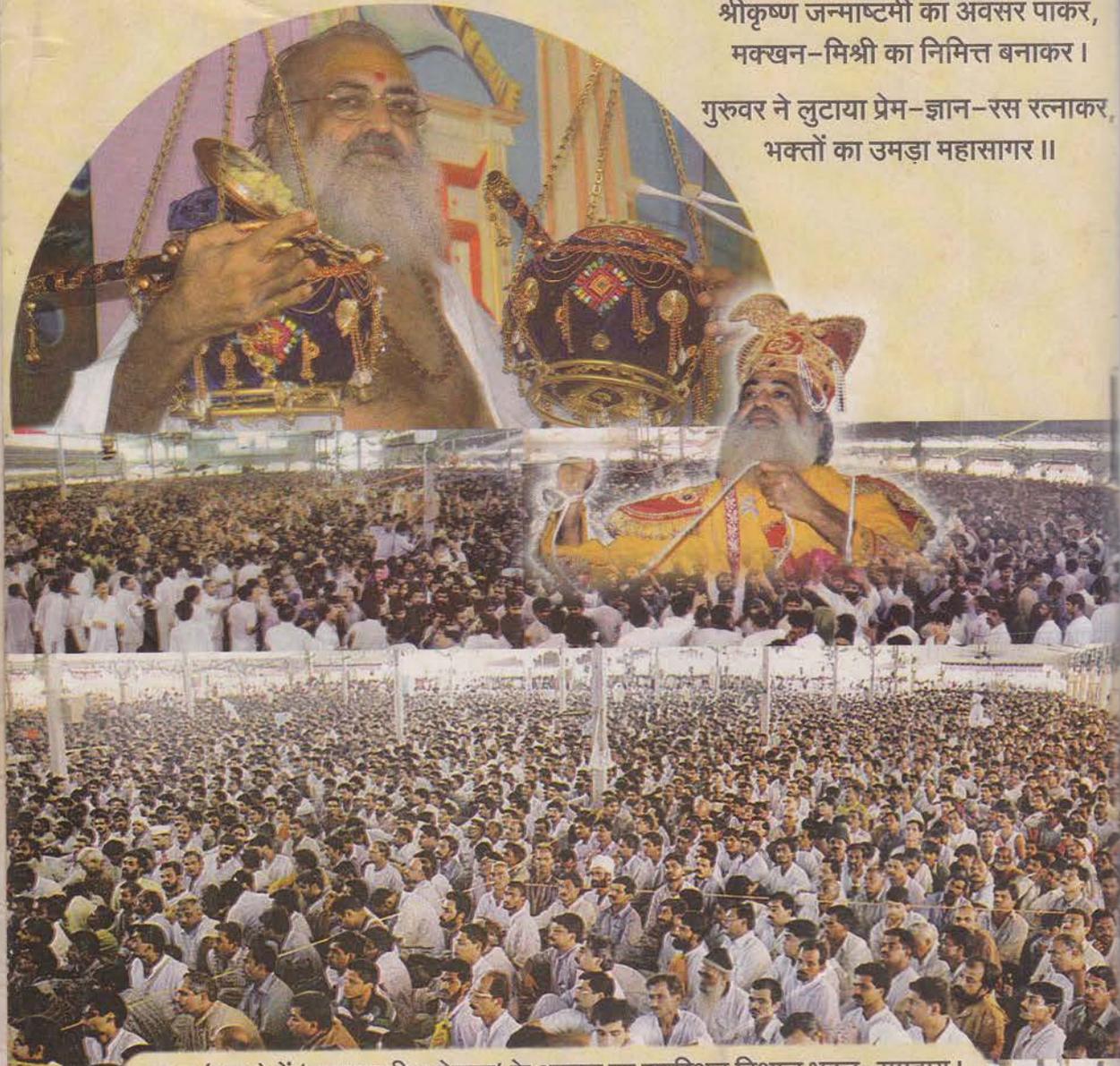
सूरत (गुज.) में 'जन्माष्टमी महोत्सव' के अवसर पर उपस्थित विशाल भक्त-समुदाय।

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED. NO. GAMC/1132/2002. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2002 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2002 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2002 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.